

अथ चतुर्थसमुल्लासारम्भः

अथ समावर्त्तनविवाहगृहाश्रमविधिं वक्ष्यामः

वेदानधीत्य वेदौ वा वेदं वापि यथाक्रमम्।

अविप्लुतब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रममाविशेत् ॥ १ ॥ मनु०॥

जब यथावत् ब्रह्मचर्य आचार्यानुकूल वर्त्तकर, धर्म से चारों, तीन वा दो, अथवा एक वेद को साङ्गोपाङ्ग पढ़ के जिस का ब्रह्मचर्य खण्डित न हुआ हो, वह पुरुष वा स्त्री गृहाश्रम में प्रवेश करे ॥ १ ॥

तं प्रतीतं स्वधर्मेण ब्रह्मदायहरं पितुः।

स्त्रग्विणं तल्प आसीनमर्हयेत्प्रथमं गवा ॥ २ ॥ मनु०॥

जो स्वधर्म अर्थात् यथावत् आचार्य और शिष्य का धर्म है उससे युक्त पिता जनक वा अध्यापक से ब्रह्मदाय अर्थात् विद्यारूप भाग का ग्रहण और माला का धारण करने वाला अपने पलङ्ग पर बैठे हुए आचार्य का प्रथम गोदान से सत्कार करे। वैसे लक्षणयुक्त विद्यार्थी को भी कन्या का पितृ गोदान से सत्कृत करे ॥ २ ॥

गुरुणानुमतः स्नात्वा समावृत्तो यथाविधि।

उद्धहेत द्विजो भार्या सवर्णा लक्षणान्विताम् ॥ ३ ॥ मनु०॥

गुरु की आज्ञा ले स्नान कर गुरुकुल से अनुक्रमपूर्वक आ के ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अपने वर्णानुकूल सुन्दर लक्षणयुक्त कन्या से विवाह करे ॥ ३ ॥

असपिण्डा च या मातुरस्य गोत्रा च या पितुः।

सा प्रशस्ता द्विजातीनां दारकर्मणि मैथुने ॥ ४ ॥ मनु०॥

जो कन्या माता के कुल की छः पीढ़ियों में न हो और पिता के गोत्र की न हो तो उस कन्या से विवाह करना उचित है ॥ ४ ॥ इसका यह प्रयोजन है कि—

परोक्षप्रिया इष हि देवाः प्रत्यक्षद्विषः ॥ शतपथ० ॥

यह निश्चित बात है कि जैसी परोक्ष पदार्थ में प्रीति होती है वैसी प्रत्यक्ष में नहीं। जैसे किसी ने मिश्री के गुण सुने हों और खाई न हो तो उसका मन उसी में लगा रहता है। जैसे किसी परोक्ष वस्तु की प्रशंसा सुनकर मिलने की उत्कट इच्छा होती है, वैसे ही दूरस्थ अर्थात् जो अपने गोत्र वा माता के कुल में निकट सम्बन्ध की न हो उसी कन्या से वर का विवाह होना चाहिये।

निकट और दूर विवाह करने में गुण ये हैं—

(१) एक—जो बालक बाल्यावस्था से निकट रहते हैं, परस्पर क्रीडा, लड़ाई और प्रेम करते, एक दूसरे के गुण, दोष, स्वभाव, बाल्यावस्था के विपरीत आचरण जानते और नङ्गे भी एक दूसरे को देखते हैं उन का परस्पर विवाह होने से प्रेम कभी नहीं हो सकता।

(२) दूसरा—जैसे पानी में पानी मिलने से विलक्षण गुण नहीं होता, वैसे एक गोत्र पितृ वा मातृकुल में विवाह होने में धातुओं के अदल-बदल नहीं होने से उन्नति नहीं होती।

(३) तीसरा—जैसे दूध में मिश्री वा शुण्ठ्यादि औषधियों के योग होने से उत्तमता होती है वैसे ही भिन्न गोत्र मातृ पितृ कुल से पृथक् वर्तमान स्त्री पुरुषों का विवाह होना उत्तम है।

(४) चौथा—जैसे एक देश में रोगी हो वह दूसरे देश में वायु और खान पान के बदलने से रोग रहित होता है वैसे ही दूर देशस्थों के विवाह होने में उत्तमता है।

(५) पांचवें—निकट सम्बन्ध करने में एक दूसरे के निकट होने में सुख दुःख का भान और विरोध होना भी सम्भव है, दूर देशस्थों में नहीं और दूरस्थों के विवाह में दूर-दूर प्रेम की डोरी लम्बी बढ़ जाती है निकटस्थ विवाह में नहीं।

(६) छठे—दूर-दूर देश के वर्तमान और पदार्थों की प्राप्ति भी दूर सम्बन्ध होने में सहजता से हो सकती है, निकट विवाह होने में नहीं। इसलिये—

दुहिता दुर्हिता दूरे हिता भवतीति ॥ निरु० ॥

कन्या का नाम दुहिता इस कारण से है कि इसका विवाह दूर देश में होने से हितकारी होता है निकट रहने में नहीं।

(७) सातवें—कन्या के पितृकुल में दारिद्र्य होने का भी सम्भव है क्योंकि जब-जब कन्या पितृकुल में आवेगी तब-तब इस को कुछ न कुछ देना ही होगा।

(८) आठवां—कोई निकट होने से एक दूसरे को अपने-अपने पितृकुल के सहाय का घमण्ड और जब कुछ भी दोनों में वैमनस्य होगा तब स्त्री झट ही पिता कुल में चली जायेगी। एक दूसरे की निन्दा अधिक होगी और विरोध भी, क्योंकि प्रायः स्त्रियों का स्वभाव तीक्ष्ण और मृदु होता है, इत्यादि कारणों से पिता के एकगोत्र माता की छः पीढ़ी और दक्षिण देश में विवाह करना अच्छा नहीं।

महान्त्यपि समृद्धानि गोऽजाविधनधान्यतः।

स्त्रीसम्बन्धे दशैतानि कुलानि परिवर्जयेत् ॥ १ ॥ मनु० ॥

चाहे कितने ही धन धान्य, गाय, अजा, हाथी, घोड़े, राज्य, श्री आदि से समृद्ध ये कुल हों तो भी विवाह सम्बन्ध में निम्नलिखित दश कुलों का त्याग कर दे ॥ १ ॥

हीनक्रियं निष्पुरुषं निश्छन्दो रोमशार्शसम्।

क्षय्यामयात्पेस्मारिश्वत्रिकुष्ठिकुलानि च ॥ २ ॥ मनु० ॥

जो कुल सात्क्रिया से हीन, सत्पुरुषों से रहित, वेदाध्ययन से विमुख, शरीर पर बड़े बड़े लोम, अथवा बवासीर, क्षयी, दमा, खांसी, आमाशय, मिरगी, श्वेतकुष्ठ और गलितकुष्ठयुक्त कुलों की कन्या वा वर के साथ विवाह होना न चाहिए, क्योंकि ये सब दुर्गुण और रोग विवाह करने वाले के कुल में भी प्रविष्ट हो जाते हैं, इसलिये उत्तम कुल के लड़के और लड़कियों का आपस में विवाह होना चाहिये ॥ २ ॥

नोद्धहेत्कपिलां कन्यां नाऽधिकाङ्गीं न रोगिणीम्।

नालोमिकां नातिलोमां न वाचाटान् पिङ्गलाम् ॥ ४ ॥ मनु० ॥

न पीले वर्ण वाली, न अधिकाङ्गी अर्थात् पुरुष से लम्बी चौड़ी अधिक बलवाली, न रोगयुक्ता, न लोमरहित, न बहुत लोमवाली, न बकवाद करनेहारी और भूरे नेत्रवाली ॥ ३ ॥

नर्क्षवृक्षनदीनाम्नीं नान्त्यपर्वतनामिकाम्।

न पक्ष्यहिप्रेष्यनाम्नीं न च भीषणनामिकाम् ॥ ४ ॥ मनु० ॥

न ऋक्ष अर्थात् अश्विनी, भरणी, रोहिणीदेई, रेवतीबाई, चित्तारी आदि नक्षत्र नाम वाली; तुलसिया, गेंदा, गुलाब, चम्पा, चमेली आदि वृक्ष नामवाली; गङ्गा, जमुना आदि नदी नामवाली; चाण्डाली आदि अन्त्य नामवाली; विन्ध्या, हिमालया, पार्वती आदि पर्वत नामवाली; कोकिला, मैना आदि पक्षी नामवाली; नागी, भुजंगा आदि सर्प नामवाली; माधोदासी, मीरादासी आदि प्रेष्य नामवाली और भीमकुअरि, चण्डिका, काली आदि भीषण नामवाली कन्या के साथ विवाह न करना चाहिये क्योंकि ये नाम कुत्सित और अन्य पदार्थों के भी हैं ॥ ४ ॥

अव्यङ्गाङ्गीं सौम्यनाम्नीं हंसवारणगामिनीम् ।

तनुलोमकेशदशनां मृद्वङ्गीमुद्वहेत्स्त्रियम् ॥ ५ ॥ मनु० ॥

जिस के सरल सूधे अङ्ग हों विरुद्ध न हों, जिस का नाम सुन्दर अर्थात् यशोदा, सुखदा आदि हो, हंस और हथिनी के तुल्य जिस की सोल हो, सूक्ष्म लोम केश और दांत युक्त और जिस के सब अङ्ग कोमल हों वैसी स्त्री के साथ विवाह करना चाहिये ॥ ५ ॥

(प्रश्न) विवाह का समय और प्रकार कौनसा अच्छा है?

(उत्तर) सोलहवें वर्ष से लेके चौबीसवें वर्ष तक कन्या और २५ पच्चीसवें वर्ष से ले के ४८वें वर्ष तक पुरुष का विवाह समय उत्तम है। इस में जो सोलह और पच्चीस में विवाह करे तो निकृष्ट; अठारह बीस वर्ष की स्त्री तथा तीस पैंतीस वा चालीस वर्ष के पुरुष का मध्यम; चौबीस वर्ष की स्त्री और अड़तालीस वर्ष के पुरुष का विवाह उत्तम है। जिस देश में इसी प्रकार विवाह की विधि श्रेष्ठ और ब्रह्मचर्य विद्याभ्यास अधिक होता है वह देश सुखी और जिस देश में ब्रह्मचर्य, विद्याग्रहणरहित बाल्यावस्था और अयोग्यों का विवाह होता है वह देश दुःख में डूब जाता है। क्योंकि ब्रह्मचर्य विद्या के ग्रहणपूर्वक विवाह के सुधार ही से सब बातों का सुधार और बिगाड़ने से बिगाड़ हो जाता है।

(प्रश्न) अष्टवर्षा भवेद् गौरी नववर्षा च रोहिणी ।

दशवर्षा भवेत्कन्या तत ऊर्ध्वं रजस्वला ॥ १ ॥

माता पितृ पिता तस्या ज्येष्ठो भ्राता तथैव च ।

त्रयान् नरकं यान्ति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलाम् ॥ २ ॥

ये श्लोक पाराशरी और शीघ्रबोध में लिखे हैं। अर्थ यह है कि कन्या आठवें वर्ष गौरी, नवमे वर्ष रोहिणी, दशवें वर्ष कन्या और उस के आगे रजस्वला संज्ञा हो जाती है ॥ १ ॥ दसवें वर्ष तक विवाह न करके रजस्वला कन्या को माता पिता और भाई ये तीनों देख के नरक में गिरते हैं ॥ २ ॥

(उत्तर) ब्रह्मोवाच—

एकक्षणा भवेद् गौरी द्विक्षणेयन्तु रोहिणी ।

त्रिक्षणा सा भवेत्कन्या ह्यत ऊर्ध्वं रजस्वला ॥ १ ॥

माता पिता तथा भ्राता मातुलो भगिनी स्वका ।

सर्वे ते नरकं यान्ति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलाम् ॥ २ ॥

—यह सद्योनिर्मित ब्रह्मपुराण का वचन है।

अर्थ—जितने समय में परमाणु एक पलटा खावे उतने समय को क्षण कहते हैं। जब कन्या जन्मे तब एक क्षण में गौरी, दूसरे क्षण में रोहिणी, तीसरे में कन्या

और चौथे में रजस्वला हो जाती है ॥ १ ॥ उस रजस्वला को देख के उसकी माता, पिता, भाई, मामा और बहिन सब नरक को जाते हैं ॥ २ ॥

(प्रश्न) ये श्लोक प्रमाण नहीं।

(उत्तर) क्यों प्रमाण नहीं? जो ब्रह्मा जी के श्लोक प्रमाण नहीं तो तुम्हारे भी प्रमाण नहीं हो सकते।

(प्रश्न) वाह-वाह! पराशर और काशीनाथ का भी प्रमाण नहीं करते।

(उत्तर) वाह जी वाह ! क्या तुम ब्रह्मा जी का प्रमाण नहीं करते, पराशर काशीनाथ से ब्रह्मा जी बड़े नहीं हैं? जो तुम ब्रह्मा जी के श्लोकों को नहीं मानते तो हम भी पराशर काशीनाथ के श्लोकों को नहीं मानते।

(प्रश्न) तुम्हारे श्लोक असम्भव होने से प्रमाण नहीं, क्योंकि सहस्रों क्षण जन्म समय ही में बीत जाते हैं तो विवाह कैसे हो सकता है और उस समय विवाह करने का कुछ फल भी नहीं दीखता।

(उत्तर) जो हमारे श्लोक असम्भव हैं तो तुम्हारे भी असम्भव हैं क्योंकि आठ, नौ और दसवें वर्ष भी विवाह करना निष्फल है; क्योंकि सोलहवें वर्ष के पश्चात् चौबीसवें वर्ष पर्यन्त विवाह होने से पुरुष का वीर्य परिपक्व, शरीर बलिष्ठ, स्त्री का गर्भाशय पूरा और शरीर भी बलयुक्त होने से सन्तान उत्तम होते हैं।^१ जैसे आठवें वर्ष की कन्या में सन्तानोत्पत्ति का होना असम्भव है वैसे ही गौरी, रोहिणी नाम देना भी अयुक्त है। यदि गौरी कन्या न हो किन्तु काली हो तो उस का नाम गौरी रखना व्यर्थ है और गौरी महादेव की स्त्री, रोहिणी वसुदेव की स्त्री थी उस को तुम पौराणिक लोग मातृसमान मानते हो। जब कन्यामान में गौरी आदि की भावना करते हो तो फिर उन से विवाह करना कैसे सम्भव और धर्मयुक्त हो सकता है? इसलिये तुम्हारे और हमारे दो-दो श्लोक मिथ्या ही हैं क्योंकि जैसे हमने 'ब्रह्मोवाच' करके श्लोक बना लिये हैं। वैसे वे भी पराशर आदि के नाम से बना लिये हैं। इसलिये इन सब का प्रमाण छोड़ के वेदों के प्रमाण से सब काम किया करो। देखो मनु में—

त्रीणि वर्षाण्युत्पन्नं कुमार्यृतुमती सती।

ऊर्ध्वं तु काल्यादतस्माद्विन्देत सदृशं पतिम् ॥ मनु० ॥

१. उचित समय से न्यून आयु वाले स्त्री पुरुष को गर्भाधान में मुनिवर धन्वन्तरि जी सुश्रुत में निषेध करते हैं—

ऊनषोडशवर्षायामप्राप्तः पञ्चविंशतिम् ।

यद्याधत्ते पुमान् गर्भं कुक्षिस्थः स विपद्यते ॥ १ ॥

जातो वा न चिरञ्जीवेऽजीवेद्वा दुर्बलेन्द्रियः।

तस्मादत्यन्तबालायां गर्भाधानं न कारयेत् ॥ २ ॥

अर्थ—सोलह वर्ष से न्यून वयवाली स्त्री में, पच्चीस वर्ष से न्यून आयु वाला पुरुष जो गर्भ को स्थापन करे तो वह कुक्षिस्थ हुआ गर्भ विपत्ति को प्राप्त होता अर्थात् पूर्ण काल तक गर्भाशय में रह कर उत्पन्न नहीं होता ॥ १ ॥

अथवा उत्पन्न हो तो चिरकाल तक न जीवे वा जीवे तो दुर्बलेन्द्रिय हो। इस कारण से अति बाल्यावस्था वाली स्त्री में गर्भ स्थापित न करे ॥ २ ॥

ऐसे-ऐसे शास्त्रोक्त नियम और सृष्टिक्रम को देखने और बुद्धि से विचारने से यही सिद्ध होता है कि १६ वर्ष से न्यून स्त्री और २५ वर्ष से न्यून आयु वाला पुरुष कभी गर्भाधान करने के योग्य नहीं होता। इन नियमों से विपरीत जो करते हैं वे दुःखभागी होते हैं।

कन्या रजस्वला हुए पीछे तीन वर्ष पर्यन्त पति की खोज करके अपने तुल्य पति को प्राप्त होवे। तब प्रतिमास रजोदर्शन होता है तो तीन वर्षों में ३६ वार रजस्वला हुए पश्चात् विवाह करना योग्य है, इससे पूर्व नहीं।

**काममामरणात्तिष्ठेद् गृहे कन्यर्तुमत्यपि।
न चैवैनां प्रयच्छेत्तु गुणहीनाय कर्हिचित्॥ मनु० ॥**

चाहे लड़का लड़की मरणपर्यन्त कुमार रहें परन्तु असदृश अर्थात् परस्पर विरुद्ध गुण, कर्म, स्वभाव वालों का विवाह कभी न होना चाहिये। इस से सिद्ध हुआ कि न पूर्वोक्त समय से प्रथम वा असदृशों का विवाह होना योग्य है।

(प्रश्न) विवाह माता पिता के आधीन होना चाहिये वा लड़का लड़की के आधीन रहै ?

(उत्तर) लड़का लड़की के आधीन विवाह होना उत्तम है। जो माता पिता विवाह करना कभी विचारें तो भी लड़का लड़की की प्रसन्नता के विना न होना चाहिये। क्योंकि एक दूसरे की प्रसन्नता से विवाह होने में विरोध बहुत कम होता है और सन्तान उत्तम होते हैं। अप्रसन्नता के विवाह में नित्य क्लेश ही रहता है। विवाह में मुख्य प्रयोजन वर और कन्या का है माता पिता का नहीं। क्योंकि जो उनमें परस्पर प्रसन्नता रहे तो उन्हीं को सुख और विरोध में उन्हीं को दुःख होता। और—

**सन्तुष्टो भार्यया भर्ता भर्त्रा भार्या तथैव च।
यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम्॥ मनु० ॥**

जिस कुल में स्त्री से पुरुष और पुरुष से स्त्री सदा प्रसन्न रहती है उसी कुल में आनन्द लक्ष्मी और कीर्ति निवास करती है और जहाँ विरोध, कलह होता है वहाँ दुःख, दारिद्र्य और निन्दन निवास करती है।

इसलिये जैसी स्वयंवर की रीति आर्यावर्त में परम्परा से चली आती है वही विवाह उत्तम है। जब स्त्री पुरुष विवाह करना चाहें तब विद्या, विनय, शील, रूप, आयु, बल, कुल, शरीर, का परिमाणादि यथायोग्य होना चाहिये। जब तक इन का मेल नहीं होता तब तक विवाह में कुछ भी सुख नहीं होता और न बाल्यावस्था में विवाह करने से सुख होता।

युवा सुवासाः परिवीत आगात्स उ श्रेयांभवति जायमानः ।

तं धीरासः क्वय उन्नयन्ति स्वाध्योऽ मनसा देवयन्तः ॥१॥

—ऋ० मं० ३। सू० ८। मं० ४॥

आ धेनवो धुनयन्तामशिंश्वीः सबर्दुर्घाः शश्या अप्रदुग्धाः ।

नव्यान्व्या युवतयो भवन्तीर्महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥२॥

—ऋ० मं० ३। सू० ५५। मं० १६॥

पूर्वीरहं शरदः शश्रमाणा दोषावस्तोरुषसो जुरयन्तीः ।

मिनाति श्रियं जरिमा तनूनामप्यु नु पत्नीर्वृषणो जगम्युः ॥३॥

—ऋ० मं० १। सू० १७९। मं० १॥

जो पुरुष (परिवीतः) सब ओर से यज्ञोपवीत, ब्रह्मचर्य्य सेवन से उत्तम शिक्षा और विद्या से युक्त (सुवासाः) सुन्दर वस्त्र धारण किया हुआ ब्रह्मचर्य्ययुक्त (युवा) पूर्ण ज्वान होके विद्याग्रहण कर गृहाश्रम में (आगात्) आता है (स उ) वही दूसरे विद्याजन्म में (जायमानः) प्रसिद्ध होकर (श्रेयान्) अतिशय शोभायुक्त मङ्गलकारी (भवति) होता है (स्वाध्यः) अच्छे प्रकार ध्यानयुक्त (मनसा) विज्ञान से (देवयन्तः) विद्यावृद्धि की कामनायुक्त (धीरासः) धैर्ययुक्त (कवयः) विद्वान् लोग (तम्) उसी पुरुष को (उन्नयन्ति) उन्नतिशील करके प्रतिष्ठित करते हैं और जो ब्रह्मचर्य्यधारण, विद्या, उत्तम शिक्षा का ग्रहण किये विना अथवा बाल्यावस्था में विवाह करते हैं वे स्त्री पुरुष नष्ट भ्रष्ट होकर विद्वानों में प्रतिष्ठा को प्राप्त नहीं होते ॥ १ ॥

जो (अप्रदुग्धाः) किसी से दुही न हो उन (धेनवः) गौओं के समान (अशिश्वीः) बाल्यावस्था से रहित (सबर्दुग्धाः) सब प्रकार के उत्तम व्यवहारों का पूर्ण करनेहारी (शशयाः) कुमारावस्था को उल्लंघन करने हारी (नव्यानव्याः) नवीन-नवीन शिक्षा और अवस्था से पूर्ण (भवन्तीः) वर्तमान (युवतयः) पूर्ण युवावस्थास्थ स्त्रियां (देवानाम्) ब्रह्मचर्य्य, सुनियमों से पूर्ण विद्वानों के (एकम्) अद्वितीय (महत्) बड़े (असुरत्वम्) प्रज्ञा शास्त्रशिक्षोयुक्त प्रज्ञा में रमण के भावार्थ को प्राप्त होती हुई तरुण पतियों को प्राप्त होके (आधुनयन्ताम्) गर्भ धारण करे कभी भूल के भी बाल्यावस्था में पुरुष का ध्यान से भी ध्यान न करें क्योंकि यही कर्म इस लोक और परलोक के सुख का सधन है। बाल्यावस्था में विवाह से जितना पुरुष का नाश उस से अधिक स्त्री का नाश होता है ॥ २ ॥

जैसे (नु) शीघ्र (शश्रमाणाः) अत्यन्त श्रम करनेहारे (वृषणः) वीर्य सींचने में समर्थ पूर्ण युवावस्थायुक्त पुरुष (पत्नीः) युवावस्थास्थ हृदयों को प्रिय स्त्रियों को (जगम्युः) प्राप्त होकर पूर्ण शतवर्ष वा उससे अधिक वर्ष आयु को आनन्द से भोगते और पुत्र पौत्रादि से संयुक्त रहते रहें वैसे स्त्री पुरुष सदा वर्ते, जैसे (पूर्वीः) पूर्व वर्तमान (शरदः) शरद ऋतुओं और (जरयन्तीः) वृद्धावस्था को प्राप्त कराने वाली (उषसः) प्रातःकाल की वेलाओं को (दोषाः) रात्री और (वस्तोः) दिन (तनूनाम्) शरीरों को (श्रियम्) शोभा को (जरिमा) अतिशय वृद्धपन बल और शोभा को (मिनादि) दूर कर देता है वैसे (अहम्) मैं स्त्री वा पुरुष (उ) अच्छे प्रकार (अपि) निश्चय करके ब्रह्मचर्य्य से विद्या शिक्षा शरीर और आत्मा के बल और युवावस्था को प्राप्त हो ही के विवाह करूँ इस से विरुद्ध करना वेदविरुद्ध होने से सुखदायक विवाह कभी नहीं होता ॥ ३ ॥

जब तक इसी प्रकार सब ऋषि-मुनि राजा महाराजा आर्य्य लोग ब्रह्मचर्य्य से विद्या पढ़ ही के स्वयंवर विवाह करते थे तब तक इस देश की सदा उन्नति होती थी। जब से यह ब्रह्मचर्य्य से विद्या का न पढ़ना, बाल्यावस्था में पराधीन अर्थात् माता पिता के आधीन विवाह होने लगा तब से क्रमशः आर्य्यावर्त देश की हानि होती चली आई है। इस से इस दुष्ट काम को छोड़ के सज्जन लोग पूर्वोक्त प्रकार से स्वयंवर विवाह किया करें। सो विवाह वर्णानुक्रम से करें और वर्णव्यवस्था भी गुण, कर्म, स्वभाव के अनुसार होनी चाहिये।

(प्रश्न) क्या जिस के माता पिता ब्राह्मण हों वह ब्राह्मणी ब्राह्मण होता है और जिसके माता पिता अन्य वर्णस्थ हों उन का सन्तान कभी ब्राह्मण हो सकता है?

(उत्तर) हां बहुत से हो गये, होते हैं और होंगे भी। जैसे छान्दोग्य उपनिषद् में जाबाल ऋषि अज्ञातकुल, महाभारत में विश्वामित्र क्षत्रिय वर्ण और मातङ्ग ऋषि चाण्डाल कुल से ब्राह्मण हो गये थे। अब भी जो उत्तम विद्या स्वभाव वाला है वही ब्राह्मण के योग्य और मूर्ख शूद्र के योग्य होता है और वैसा ही आगे भी होगा।

(प्रश्न) भला जो रज वीर्य से शरीर हुआ है वह बदल कर दूसरे वर्ण के योग्य कैसे हो सकता है।

(उत्तर) रज वीर्य के योग से ब्राह्मण शरीर नहीं होता किन्तु—

स्वाध्यायेन जपैर्होमैस्त्रैविद्येनेज्यया सुतैः।

महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः ॥ मनु० ॥

इस का अर्थ पूर्व कर आये हैं अब यहां भी संक्षेप से करते हैं। (स्वाध्यायेन) पढ़ने पढ़ाने (जपैः) विचार करने कराने नानाविध होम के अनुष्ठान, सम्पूर्ण वेदों को शब्द, अर्थ, सम्बन्ध, स्वरोच्चारणसहित पढ़ने पढ़ाने (इत्यया) पौर्णमासी, इष्टि आदि के करने, पूर्वोक्त विधिपूर्वक (सुतैः) धर्म से सत्मानोत्पत्ति (महायज्ञैश्च) पूर्वोक्त ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ, वैश्वदेवयज्ञ और अतिथियज्ञ, (यज्ञैश्च) अग्निष्टोमादि-यज्ञ, विद्वानों का संग, सत्कार, सत्यभाषण, परमकारादि सत्कर्म और सम्पूर्ण शिल्पविद्यादि पढ़ के दुष्टाचार छोड़ श्रेष्ठाचार में वर्तने से (इयम्) यह (तनुः) शरीर (ब्राह्मी) ब्राह्मण का (क्रियते) किया जाता है। क्या इस श्लोक को तुम नहीं मानते? मानते हैं। फिर क्यों रज वीर्य के योग से वर्णव्यवस्था मानते हो? मैं अकेला नहीं मानता किन्तु बहुत से लोग परम्परा से ऐसा ही मानते हैं।

(प्रश्न) क्या तुम परम्परा को भी खण्डन करोगे?

(उत्तर) नहीं, परन्तु तुम्हारी उलटी समझ को नहीं मान के खण्डन भी करते हैं।

(प्रश्न) हमारी उलटी और तुम्हारी सूधी समझ है इस में क्या प्रमाण?

(उत्तर) यही प्रमाण है कि जो तुम पांच सात पीढ़ियों के वर्तमान को सनातन व्यवहार मानते हो और हम वेद तथा सृष्टि के आरम्भ से आजपर्यन्त की परम्परा मानते हैं। देखो जिस का पिता श्रेष्ठ उस का पुत्र दुष्ट और जिस का पुत्र श्रेष्ठ उस का पिता दुष्ट तथा कहीं दोनों श्रेष्ठ वा दुष्ट देखने में आते हैं इसलिये तुम लोग भ्रम में पड़े हो। देखो! मनु महाराज ने क्या कहा है—

येनास्य पितरो याता येन याता पितामहाः।

तेन यायात्सतां मार्गं तेन गच्छन् रिष्यते ॥ मनु० ॥

जिस मार्ग से इस के पिता, पितामह चले हों उस मार्ग में सन्तान भी चलें परन्तु (सताम्) जो सत्पुरुष पिता पितामह हों उन्हीं के मार्ग में चलें और जो पिता, पितामह दुष्ट हों तो उन के मार्ग में कभी न चलें। क्योंकि उत्तम धर्मात्मा पुरुषों के मार्ग में चलने से दुःख कभी नहीं होता इस को तुम मानते हो वा नहीं?

हां हां मानते हैं।

और देखो जो परमेश्वर की प्रकाशित वेदोक्त बात है वही सनातन और उस के विरुद्ध है वह सनातन कभी नहीं हो सकती। ऐसा ही सब लोगों को मानना चाहिये वा नहीं?

अवश्य चाहिये।

जो ऐसा न माने उस से कहो कि किसी का पिता दरिद्र हो उस का पुत्र धनाढ्य होवे तो क्या अपने पिता की दरिद्रावस्था के अभिमान से धन को फेंक देवे? क्या जिस का पिता अन्धा हो उस का पुत्र भी अपनी आंखों को फोड़ लेवे? जिस का पिता कुकर्म हो क्या उस का पुत्र भी कुकर्म को ही करे? नहीं-नहीं किन्तु जो-जो पुरुषों के उत्तम कर्म हों उन का सेवन और दुष्ट कर्मों का त्याग कर देना सब का अत्यावश्यक है।

जो कोई रज वीर्य के योग से वर्णाश्रम-व्यवस्था माने और गुण कर्मों के योग से न माने तो उस से पूछना चाहिये कि जो कोई अपने वर्ण को छोड़ नीच, अन्त्यज अथवा कृश्चीन, मुसलमान हो गया हो उस को भी ब्राह्मण क्यों नहीं मानते? यहां यही कहोगे कि उस ने ब्राह्मण के कर्म छोड़ दिये इसलिये वह ब्राह्मण नहीं है। इस से यह भी सिद्ध होता है जो ब्राह्मणादि उत्तम कर्म करते हैं वे ही ब्राह्मणादि और जो नीच भी उत्तम वर्ण के गुण, कर्म, स्वभाव वाला होवे तो उस को भी उत्तम वर्ण में और जो उत्तम वर्णस्थ होके नीच काम करे तो उसको नीच वर्ण में गिनना अवश्य चाहिये।

(प्रश्न) ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः ।

ऊरू तदस्य वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥

यह यजुर्वेद के ३१वें अध्याय का १२वां मन्त्र है। इसका यह अर्थ है कि ब्राह्मण ईश्वर के मुख, क्षत्रिय बाहू, वैश्य ऊरू और शूद्र पगों से उत्पन्न हुआ है। इसलिये जैसे मुख न बाहू आदि और बाहू न ऊरू आदि न मुख होते हैं, इसी प्रकार ब्राह्मण न क्षत्रियादि और क्षत्रियादि न ब्राह्मण हो सकते हैं।

(उत्तर) इस मन्त्र का अर्थ जो तुम ने किया वह ठीक नहीं क्योंकि यहां पुरुष अर्थात् निराकार व्यापक परमात्मा की अनुवृत्ति है। जब वह निराकार है तो उसके मुखादि अङ्ग नहीं हो सकते, जो मुखादि अङ्ग वाला हो वह पुरुष अर्थात् व्यापक नहीं और जो व्यापक नहीं वह सर्वशक्तिमान् जगत् का स्रष्टा, धर्ता, प्रलयकर्ता जीवों के पुण्य पापों की व्यवस्था करने हारा, सर्वज्ञ, अजन्मा, मृत्युरहित आदि विशेषणवाला नहीं हो सकता।

इसलिये इस का यह अर्थ है कि जो (अस्य) पूर्ण व्यापक परमात्मा की सृष्टि में मुख के सदृश सब में मुख्य उत्तम हो वह (ब्राह्मणः) ब्राह्मण (बाहू) 'बाहुर्वै बलं बाहुर्वै वीर्यम्' शतपथब्राह्मण। बल वीर्य का नाम बाहू है वह जिस में अधिक हो सो (राजन्यः) क्षत्रिय (ऊरू) कटि के अधो और जानु के उपरिस्थ भाग का नाम है जो सब पदार्थों और सब देशों में ऊरू के बल से जावे आवे प्रवेश करे वह (वैश्यः) वैश्य और (पद्भ्याम्) जो पग के अर्थात् नीच अङ्ग के सदृश मूर्खत्वादि गुणवाला हो वह शूद्र है। अन्यत्र शतपथ ब्राह्मणादि में भी इस मन्त्र का ऐसा ही अर्थ किया है। जैसे—

'यस्मादेते मुख्यास्तस्मान्मुखतो ह्यसृज्यन्त।' इत्यादि।

जिस से ये मुख्य हैं इस से मुख से उत्पन्न हुए ऐसा कथन संगत होता है। अर्थात् जैसा मुख सब अङ्गों में श्रेष्ठ है वैसे पूर्ण विद्या और उत्तम गुण, कर्म, स्वभाव से युक्त होने से मनुष्यजाति में उत्तम ब्राह्मण कहाता है। जब परमेश्वर के

निराकार होने से मुखादि अङ्ग ही नहीं हैं तो मुख आदि से उत्पन्न होना असम्भव है। जैसा कि वन्ध्या स्त्री आदि के पुत्र का विवाह होना! और जो मुखादि अङ्गों से ब्राह्मणादि उत्पन्न होते तो उपादान कारण के सदृश ब्राह्मणादि की आकृति अवश्य होती। जैसे मुख का आकार गोल मोल है वैसे ही उन के शरीर का भी गोलमोल मुखाकृति के समान होना चाहिये। क्षत्रियों के शरीर भुजा के सदृश, वैश्यों के ऊरू के तुल्य और शूद्रों के शरीर पग के समान आकार वाले होने चाहिये। ऐसा नहीं होता और जो कोई तुम से प्रश्न करेगा कि जो जो मुखादि से उत्पन्न हुए थे उन की ब्राह्मणादि संज्ञा हो परन्तु तुम्हारी नहीं; क्योंकि जैसे और सब लोग गर्भाशय से उत्पन्न होते हैं वैसे तुम भी होते हो। तुम मुखादि से उत्पन्न न होकर ब्राह्मणादि संज्ञा का अभिमान करते हो इसलिये तुम्हारा कहा अर्थ व्यर्थ है और जो हम ने अर्थ किया है वह सच्चा है। ऐसा ही अन्यत्र भी कहा है।—

**शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम्।
क्षत्रियाज्जातमेवन्तु विद्याद्वैश्यात्तथैव च॥ मनु० ॥**

जो शूद्रकुल में उत्पन्न होके ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के समान गुण, कर्म, स्वभाव वाला हो तो वह शूद्र ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य हो जाय, वैसे ही ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्यकुल में उत्पन्न हुआ हो और उस के गुण, कर्म, स्वभाव शूद्र के सदृश हों तो वह शूद्र हो जाय। वैसे क्षत्रिय, वैश्य के कुल में उत्पन्न होके ब्राह्मण वा शूद्र के समान होने से ब्राह्मण और शूद्र भी हो जाता है। अर्थात् चारों वर्णों में जिस-जिस वर्ण के सदृश जो-जो पुरुष वा स्त्री हो वह-वह उसी वर्ण में गिनी जावे।

**धर्मचर्य्या जघन्यो वर्णः पूर्वं पूर्वं वर्णमापद्यते जातिपरिवृत्तौ ॥ १ ॥
अधर्मचर्य्या पूर्वो वर्णो जघन्यं जघन्यं वर्णमापद्यते जातिपरिवृत्तौ ॥ २ ॥**

ये आपस्तम्ब के सूत्र हैं। धर्माचरण से निकृष्ट वर्ण अपने से उत्तम-उत्तम वर्ण को प्राप्त होता है और वह उसी वर्ण में गिना जावे कि जिस-जिस के योग्य होवे ॥ १ ॥

वैसे अधर्माचरण से पूर्व अर्थात् उत्तम वर्णवाला मनुष्य अपने से नीचे-नीचे वाले वर्ण को प्राप्त होता है और उसी वर्ण में गिना जावे ॥ २ ॥

जैसे पुरुष जिस-जिस वर्ण के योग्य होता है वैसे ही स्त्रियों की भी व्यवस्था समझनी चाहिये। इससे क्या सिद्ध हुआ कि इस प्रकार होने से सब वर्ण अपने-अपने गुण, कर्म, स्वभावयुक्त होकर शुद्धता के साथ रहते हैं। अर्थात् ब्राह्मणकुल में कोई क्षत्रिय वैश्य और शूद्र के सदृश न रहे। और क्षत्रिय वैश्य तथा शूद्र वर्ण भी शुद्ध रहते हैं। अर्थात् वर्णसंकरता प्राप्त न होगी। इस से किसी वर्ण की निन्दा वा अयोग्यता भी न होगी।

(प्रश्न) जो किसी के एक ही पुत्र वा पुत्री हो वह दूसरे वर्ण में प्रविष्ट जो जाय तो उसके माँ बाप की सेवा कौन करेगा और वंशच्छेदन भी हो जायेगा। इस की क्या व्यवस्था होनी चाहिये?

(उत्तर) न किसी की सेवा का भङ्ग और न वंशच्छेदन होगा क्योंकि उन का अपने लड़के लड़कियों के बदले स्ववर्ण के योग्य दूसरे सन्तान विद्यासभा और राजसभा की व्यवस्था से मिलेंगे, इसलिये कुछ भी अव्यवस्था न होगी।

यह गुण कर्मों से वर्णों की व्यवस्था कन्याओं की सोलहवें वर्ष और पुरुषों की पच्चीसवें वर्ष की परीक्षा में नियत करनी चाहिये। और इसी क्रम से अर्थात् ब्राह्मण वर्ण का ब्राह्मणी, क्षत्रिय वर्ण का क्षत्रिया, वैश्य वर्ण का वैश्या और शूद्र वर्ण का शूद्रा के साथ विवाह होना चाहिये। तभी अपने-अपने वर्णों के कर्म और परस्पर प्रीति भी यथायोग्य रहेगी। इन चारों वर्णों के कर्तव्य कर्म और गुण ये हैं—

अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा।

दानं प्रतिग्रहश्चैव ब्राह्मणानामकल्पयत् ॥ १ ॥

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च।

ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्मस्वभावजम् ॥ २ ॥ ५० गी० ॥

ब्राह्मण के पढ़ना, पढ़ाना, यज्ञ करना कराना, दान देना, लेना ये छः कर्म हैं परन्तु 'प्रतिग्रहः प्रत्यवरः' मनु० अर्थात् प्रतिग्रह लेना नीच कर्म है ॥ १ ॥ (शमः) मन से बुरे काम की इच्छा भी न करनी और उस को अधर्म में कभी प्रवृत्त न होने देना; (दमः) श्रोत्र और चक्षु आदि इन्द्रियों को अन्यायाचरण से रोक कर धर्म में चलाना, (तपः) सदा ब्रह्मचारी जितेन्द्रिय होके धर्मानुष्ठान करना; (शौच) —

अद्धिर्गात्राणि शुध्यन्ति मनः सत्येन शुध्यति।

विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति ॥ मनु० ॥

जल से बाहर के अङ्ग, सत्याचार से मन, विद्या और धर्मानुष्ठान से जीवात्मा और ज्ञान से बुद्धि पवित्र होती है। भीतर के राग, द्वेषादि दोष और बाहर के मलों को दूर कर शुद्ध रहना अर्थात् सत्यासत्य के विवेकपूर्वक सत्य के ग्रहण और असत्य के त्याग से निश्चय पवित्र होता है। (क्षान्ति) अर्थात् निन्दा स्तुति, सुख दुःख, शीतोष्ण, क्षुधा तृषा, हानि लाभ, मायापमान आदि हर्ष शोक, छोड़ के धर्म में दृढ़ निश्चय रहना। (आर्जव) कोमलता, निरभिमान, सरलता, सरलस्वभाव रखना, कुटिलतादि दोष छोड़ देना। (शमम्) सब वेदादि शास्त्रों को साङ्गोपाङ्ग पढ़ने पढ़ाने का सामर्थ्य, विवेक सत्य के निर्णय जो वस्तु जैसा हो अर्थात् जड़ को जड़ चेतन को चेतन जानना और मरिना। (विज्ञान) पृथिवी से लेके परमेश्वर पर्यन्त पदार्थों को विशेषता से जानकर उन से यथायोग्य उपयोग लेना। (आस्तिक्य) कभी वेद, ईश्वर, मुक्ति, पूर्व परात्म, धर्म, विद्या, सत्सङ्ग, माता, पिता, आचार्य्य और अतिथियों की सेवा को न छोड़ना और निन्दा कभी न करना। ये पन्द्रह कर्म और गुण ब्राह्मण वर्णस्थ मनुष्यों में अवश्य होने चाहिए ॥ २ ॥ क्षत्रिय—

प्रजानां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च।

विषयेष्वप्रसक्तिश्च क्षत्रियस्य समासतः ॥ १ ॥ मनु० ॥

शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम्।

दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम् ॥ २ ॥ ५० गी० ॥

न्याय से प्रजा की रक्षा अर्थात् पक्षपात छोड़ के श्रेष्ठों का सत्कार और दुष्टों का तिरस्कार करना सब प्रकार से सब का पालन (दान) विद्या, धर्म की प्रवृत्ति और सुपात्रों की सेवा में धनादि पदार्थों का व्यय करना (इज्या) अग्निहोत्रादि यज्ञ करना वा कराना (अध्ययन) वेदादि शास्त्रों का पढ़ना तथा पढ़ाना और विषयों में न फँस कर जितेन्द्रिय रह के सदा शरीर और आत्मा से बलवान् रहना ॥ १ ॥

(शौर्य्य) सैकड़ों सहस्रों से भी युद्ध करने में अकेले को भय न होना।

(तेजः) सदा तेजस्वी अर्थात् दीनतारहित प्रगल्भ दृढ़ रहना। (धृति) धैर्यवान् होना (दाक्ष्य) राजा और प्रजासम्बन्धी व्यवहार और सब शास्त्रों में अति चतुर होना। (युद्धे) युद्ध में भी दृढ़ निःशंक रहके उस से कभी न हटना न भागना अर्थात् इस प्रकार से लड़ना कि जिस से निश्चित विजय होवे, आप बचे, जो भागने से वा शत्रुओं को धोखा देने से जीत होती हो तो ऐसा ही करना। (दान) दानशीलता रखना। (ईश्वरभाव) पक्षपातरहित होके सब के साथ यथायोग्य वर्तना, विचार के देवे, प्रतिज्ञा पूरा करना, उस को कभी भङ्ग होने न देना। ये ग्यारह क्षत्रिय वर्ण के गुण हैं ॥ २ ॥ वैश्य—

पशूनां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च।

वणिक्पथं कुसीदं च वैश्यस्य कृषिमेव च ॥ मनु० ॥

(पशुरक्षा) गाय आदि पशुओं का पालन-वर्द्धन करना (दान) विद्या धर्म की वृद्धि करने कराने के लिये धनादि का व्यय करना (इज्या) अग्निहोत्रादि यज्ञों का करना (अध्ययन) वेदादि शास्त्रों का पढ़ना (वणिक्पथ) सब प्रकार के व्यापार करना (कुसीद) एक सैकड़े में चार, छः, आठ, बारह, सोलह, वा बीस आनों से अधिक ब्याज और मूल से दूना अर्थात् एक रुपया दिया तो सौ वर्ष में भी दो रुपये से अधिक न लेना और न देना (कृषि) खेती करना। ये वैश्य के गुण कर्म हैं। शूद्र—

एकमेव हि शूद्रस्य प्रभुः कर्म समुद्दिशत्।

एतेषामेव वर्णानां शुश्रूषाधनेसूयया ॥ मनु० ॥

शूद्र को योग्य है निन्दा, ईर्ष्या, अभिमान आदि दोषों को छोड़ के ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों की सेवा यथावत् करना और उसी से अपना जीवन-यापन करना यही एक शूद्र का कर्म गुण है ॥ ॥

ये संक्षेप से वर्णों के गुण और कर्म लिखे। जिस-जिस पुरुष में जिस-जिस वर्ण के गुण कर्म हों उस-उस वर्ण का अधिकार देना। ऐसी व्यवस्था रखने से सब मनुष्य उन्नतिशील होंगे हैं। क्योंकि उत्तम वर्णों को भय होगा कि जो हमारे सन्तान मूर्खत्वादि दोषरक्त होंगे तो शूद्र हो जायेंगे और सन्तान भी डरते रहेंगे कि जो हम उक्त चालचरने और विद्यायुक्त न होंगे तो शूद्र होना पड़ेगा और नीच वर्णों को उत्तम वर्णस्थान के लिए उत्साह बढ़ेगा।

विद्या और धर्म के प्रचार का अधिकार ब्राह्मण को देना क्योंकि वे पूर्ण विद्यावान् और धार्मिक होने से उस काम को यथायोग्य कर सकते हैं। क्षत्रियों को राज्य के अधिकार देने से कभी राज्य की हानि वा विघ्न नहीं होता। पशुपालनादि का अधिकार वैश्यों ही को होना योग्य है क्योंकि वे इस काम को अच्छे प्रकार कर सकते हैं। शूद्र को सेवा का अधिकार इसलिये है कि वह विद्या रहित मूर्ख होने से विज्ञानसम्बन्धी काम कुछ भी नहीं कर सकता किन्तु शरीर के काम सब कर सकता है। इस प्रकार वर्णों को अपने-अपने अधिकार में प्रवृत्त करना राजा आदि सभ्य जनों का काम है।

विवाह के लक्षण

ब्राह्मो दैवस्तथैवार्षः प्राजापत्यस्तथाऽऽसुरः।

गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमोऽधमः ॥ मनु० ॥

विवाह आठ प्रकार का होता है। एक ब्राह्म, दूसरा दैव, तीसरा आर्ष, चौथा प्राजापत्य, पांचवां आसुर, छठा गान्धर्व, सातवां राक्षस, आठवां पैशाच। इन विवाहों की यह व्यवस्था है कि—वर कन्या दोनों यथावत् ब्रह्मचर्य से पूर्ण विद्वान् धार्मिक और सुशील हों उन का परस्पर प्रसन्नता से विवाह होना 'ब्राह्म' कहाता है। विस्तृतयज्ञ करने में ऋत्विक् कर्म करते हुए जामाता को अलङ्कारयुक्त कन्या का देना 'दैव'। वर से कुछ लेके विवाह होना 'आर्ष'। दोनों का विवाह धर्म की वृद्धि के अर्थ होना 'प्राजापत्य'। वर और कन्या को कुछ देके विवाह 'आसुर'। अनियम, असमय किसी कारण से वर-कन्या का इच्छापूर्वक परस्पर संयोग होना 'गान्धर्व'। लड़ाई करके बलात्कार अर्थात् छीन, भ्रपट वा कपट से कन्या का ग्रहण करना 'राक्षस'। शयन वा मद्यादि पी हुई पागल कन्या से बलात्कार संयोग करना 'पैशाच'।

इन सब विवाहों में ब्राह्मविवाह सर्वोत्कृष्ट, दैव मध्यम, आर्ष, आसुर और गान्धर्व निकृष्ट, राक्षस अधम और पैशाच महाभ्रष्ट है। इसलिए यही निश्चय रखना चाहिये कि कन्या और वर का विवाह के पूर्व एकान्त में मेल न होना चाहिए क्योंकि युवावस्था में स्त्री पुरुष का एकान्तवास दूषणकारक है परन्तु जब कन्या वा वर के विवाह का समय हो अर्थात् जब एक वर्ष वा छः महीने ब्रह्मचर्याश्रम और विद्या पूरी होने में शेष रहें तब उन कन्या और कुमारों का प्रतिबिम्ब अर्थात् जिस को 'फोटोग्राफ' कहते हैं अथवा प्रतिकृति उतार के कन्याओं की अध्यापिकाओं के पास कुमारों की, कुमारों के अध्यापकों के पास कन्याओं की प्रतिकृति भेज दें। जिस-जिस का रूप मिल जाय उस-उस के इतिहास अर्थात् जन्म से लेके उस दिन पर्यन्त जन्मचरित्र का पुस्तक हो उसे को अध्यापक लोग मंगवा के देखें। जब दोनों के गुण कर्म स्वभाव सदृश हों तब जिस-जिस के साथ जिस-जिस का विवाह होना योग्य समझें उस-उस पुरुष और कन्या का प्रतिबिम्ब और इतिहास कन्या और वर के हाथ में दें और कहें कि इस में जो तुम्हारा अभिप्राय हो सो हम को विदित कर देना। जब उन दोनों का निश्चय परस्पर विवाह करने का हो जाय तब उन दोनों का समावर्तन एक ही समय में होवे।

जो वे दोनों अध्यापकों के सामने विवाह करना चाहें तो वहां, नहीं तो कन्या के माता पिता के घर में विवाह होना योग्य है। जब वे समक्ष हों तब उन अध्यापकों वा कन्या के माता पिता आदि भद्रपुरुषों के सामने उन दोनों की आपस में बातचीत, शास्त्रार्थ कराना और जो कुछ गुप्त व्यवहार पूछें सो भी सभा में लिखके एक दूसरे के हाथ में देकर प्रश्नोत्तर कर लें।

जब दोनों का दृढ़ प्रेम विवाह करने में हो जाय तब से उनके खान-पान का उत्तम प्रबन्ध होना चाहिये कि जिस से उनका शरीर जो पूर्व ब्रह्मचर्य और विद्याध्ययनरूप तपश्चर्या और कष्ट से दुर्बल होता है वह चन्द्रमा की कला के समान बढ़ के पुष्ट थोड़े ही दिनों में हो जाय।

पश्चात् जिस दिन कन्या रजस्वला होकर जब शुद्ध हो तब वेदी और मण्डप रचके अनेक सुगन्ध्यादि द्रव्य और घृतादि का होम तथा अनेक विद्वान् पुरुष और स्त्रियों का यथायोग्य सत्कार करें। पश्चात् जिस दिन ऋतुदान देना योग्य समझें उसी दिन 'संस्कारविधि' पुस्तकस्थ विधि के अनुसार सब कर्म करके मध्यरात्रि वा दश बजे अति प्रसन्नता से सब के सामने पाणिग्रहणपूर्वक विवाह की विधि को पूरा करके एकान्तसेवन करें। पुरुष वीर्यस्थापन और स्त्री वीर्याकर्षण की जो

विधि है उसी के अनुसार दोनों करें। जहां तक बने वहां तक ब्रह्मचर्य के वीर्य को व्यर्थ न जाने दें क्योंकि उस वीर्य वा रज से जो शरीर उत्पन्न होता है वह अपूर्व उत्तम सन्तान होता है। जब वीर्य का गर्भाशय में गिरने का समय हो उस समय स्त्री और पुरुष दोनों स्थिर और नासिका के सामने नासिका, नेत्र के सामने नेत्र अर्थात् सूधा शरीर और अत्यन्त प्रसन्नचित्त रहें, डिगें नहीं। पुरुष अपने शरीर को ढीला छोड़े और स्त्री वीर्यप्राप्ति समय अपान वायु को ऊपर खींचे, योनि को ऊपर संकोच कर वीर्य का ऊपर आकर्षण करके गर्भाशय में स्थित करे। पश्चात् दोनों शुद्ध जल से स्नान करें।^१

गर्भस्थिति होने का परिज्ञान विदुषी स्त्री को तो उसी समय हो जाता है परन्तु इस का निश्चय एक मास के पश्चात् रजस्वला न होने पर सब को हो जाता है। सोंठ, केशर, असगन्ध, छोटी इलायची और सालममिश्री के गर्म करके जो प्रथम ही रक्खा हुआ ठण्डा दूध है उस को यथारुचि दोनों पी के अलग-अलग अपनी-अपनी शय्या में शयन करें। यही विधि जब-जब गर्भाधान क्रिया करें तब-तब करना उचित है।

जब महीने भर में रजस्वला न होने से गर्भस्थिति का निश्चय हो जाय तब से एक वर्ष पर्यन्त स्त्री पुरुष का समागम कर्भिन होना चाहिये। क्योंकि ऐसा न होने से सन्तान उत्तम और पुनः दूसरा सन्तान भी वैसा ही होता है। अन्यथा वीर्य व्यर्थ जाता दोनों की आयु घट जाती और अनेक प्रकार के रोग होते हैं परन्तु ऊपर से भाषणादि प्रेमयुक्त व्यवहार दोनों को अवश्य रखना चाहिये। पुरुष वीर्य की स्थिति और स्त्री गर्भ की रक्षा और भोजन छानने इस प्रकार का करे कि जिस से पुरुष का वीर्य स्वप्न में भी नष्ट न हो और गर्भ में बालक का शरीर अत्युत्तम रूप लावण्य, पुष्टि, बल, पराक्रमयुक्त होकर दशम महीने में जन्म होवे। विशेष उस की रक्षा चौथे महीने से और अतिविशेष आठवें महीने से आगे करनी चाहिये। कभी गर्भवती स्त्री रेचक, रूक्ष, मादकद्रव्य, बुद्ध और बलनाशक पदार्थों के भोजनादि का सेवन न करे किन्तु घी, दूध, उरुम चावल, गेहूं, मूँग, उर्द आदि अन्न पान और देशकाल का भी सेवन युक्तिपूर्वक करे।

गर्भ में दो संस्कार एक चौथे महीने पुंसवन और दूसरा आठवें महीने में सीमन्तोन्नयन विधि के अनुकूल करे। जब सन्तान का जन्म हो तब स्त्री और लड़के के शरीर की रक्षा बहुत सावधानी से करे अर्थात् शुण्ठीपाक अथवा सौभाग्यशुण्ठीपाक प्रथम ही बनवा रक्खें। उस समय सुगन्धियुक्त उष्ण जल जो कि किञ्चित् उष्ण रहा हो उसी से स्त्री स्नान करे और बालक को भी स्नान करावे। तत्पश्चात् नाड़ीछेदन-बालक की नाभि के जड़ में एक कोमल सूत से बांध चार अंगुल छोड़ के ऊपर से काट डाले। उस को ऐसा बांधे कि जिस से शरीर से रुधिर का एक बिन्दु भी न जाने पावे। पश्चात् उस स्थान को शुद्ध करके उस के द्वार के भीतर सुगन्धादियुक्त घृतादि का होम करे। तत्पश्चात् सन्तान के कान में पिता 'वेदोऽसीति' अर्थात् 'तेरा नाम वेद है' सुनाकर घी और सहत को लेके सोने की शलाका से जीभ पर 'ओ३म्' अक्षर लिख कर मधु और घृत को उसी शलाका से चटवावे।

१. यह बात रहस्य की है इसलिये इतने से ही समग्र बातें समझ लेनी चाहिये विशेष लिखना उचित नहीं।

पश्चात् उसकी माता को दे देवे। जो दूध पीना चाहै तो उस की माता पिलावे जो उस की माता के दूध न हो तो किसी स्त्री की परीक्षा कर के उसका दूध पिलावे।

पश्चात् दूसरे शुद्ध कोठरी वा जहां का वायु शुद्ध हो उसमें सुगन्धित घी का होम प्रातः और सायंकाल किया करे और उसी में प्रसूता स्त्री तथा बालक को रखे। छः दिन तक माता का दूध पिये और स्त्री भी अपने शरीर के पुष्टि के अर्थ अनेक प्रकार के उत्तम भोजन करे और योनि-संकोचादि भी करे। छठे दिन स्त्री बाहर निकले और सन्तान के दूध पीने के लिये कोई धायी रखे। उस को खानपान अच्छा करावे। वह सन्तान को दूध पिलाया करे और पालन भी करे परन्तु उस की माता लड़के पर पूर्ण दृष्टि रखे, किसी प्रकार का अनुचित व्यवहार उस के पालन में न हो। स्त्री दूध बन्ध करने के अर्थ स्तन के अग्रभाग पर ऐसा लेप करे कि जिस से दूध स्रवित न हो। उसी प्रकार खान-पान का व्यवहार भी यथायोग्य रखे।

पश्चात् नामकरणादि संस्कार 'संस्कारविधि' की रीति से यथाकाल करता जाय। जब स्त्री फिर रजस्वला हो तब शुद्ध होने के पश्चात् उसी प्रकार ऋतुदान देवे।

ऋतुकालाभिगामी स्यात्स्वदारनिरतः सदा।

ब्रह्मचार्यैव भवति यत्र तत्राश्रमे वपन् ॥ मनु० ॥

जो अपनी ही स्त्री से प्रसन्न और ऋतुगामी होता है वह गृहस्थ भी ब्रह्मचारी के सदृश है।

सन्तुष्टो भार्यया भर्ता भर्ता भार्या तथैव च।

यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम् ॥ १ ॥

यदि हि स्त्री न रोचेत पुमांसन्न प्रमोदयेत्।

अप्रमोदात्पुनः पुंसः प्रजनं न प्रवर्त्तते ॥ २ ॥

स्त्रियां तु रोचमानायां सर्वं तद्रोचते कुलम्।

तस्यां त्वरोचमानायां सर्वमेव न रोचते ॥ ३ ॥ मनु० ॥

जिस कुल में भार्या से भर्ता और पति से पत्नी अच्छे प्रकार प्रसन्न रहती है उसी कुल में सब सौभाग्य और ऐश्वर्य निवास करते हैं। जहां कलह होता है वहां दौर्भाग्य और अरिद्र्य स्थिर होता है ॥ १ ॥ जो स्त्री पति से प्रीति और पति को प्रसन्न नहीं करती तो पति के अप्रसन्न होने से काम उत्पन्न नहीं होता ॥ २ ॥ जिस स्त्री की प्रसन्नता में सब कुल प्रसन्न होता उसकी अप्रसन्नता में सब अप्रसन्न अर्थात् दुःखदायक हो जाता है ॥ ३ ॥

पितृभिर्भ्रातृभिश्चैताः पतिभिर्देवैस्तथा।

पूज्या भूषयितव्याश्च बहुकल्याणमीप्सुभिः ॥ १ ॥

यत्र नार्य्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।

यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राऽफलाः क्रियाः ॥ २ ॥

शोचन्ति जामयो यत्र विनश्यत्याशु तत्कुलम्।

न शोचन्ति तु यत्रैता वद्धन्ते तद्धि सर्वदा ॥ ३ ॥

तस्मादेताः सदा पूज्या भूषणाच्छादनाशनैः।

भूतिकामैर्नैर्नित्यं सत्कारेषूत्सवेषु च ॥ ४ ॥ मनु० ॥

पिता, भाई, पति और देवर इन को सत्कारपूर्वक भूषणादि से प्रसन्न रखें,

जिन को बहुत कल्याण की इच्छा हो वे ऐसे करें ॥ १ ॥ जिस घर में स्त्रियों का सत्कार होता है उस में विद्यायुक्त पुरुष होके देवसंज्ञा धरा के आनन्द से क्रीड़ा करते हैं और जिस घर में स्त्रियों का सत्कार नहीं होता वहां सब क्रिया निष्फल हो जाती हैं ॥ २ ॥ जिस घर वा कुल में स्त्री लोग शोकातुर होकर दुःख पाती हैं वह कुल शीघ्र नष्ट भ्रष्ट हो जाता है और जिस घर वा कुल में स्त्री लोग आनन्द से उत्साह और प्रसन्नता से भरी हुई रहती हैं वह कुल सर्वदा बढ़ता रहता है ॥३॥ इसलिए ऐश्वर्य की कामना करनेहारे मनुष्यों को योग्य है कि सत्कार और उत्सव के समयों में भूषण वस्त्र और भोजनादि से स्त्रियों का नित्यप्रति सत्कार करें ॥ ४ ॥ यह बात सदा ध्यान में रखनी चाहिये कि 'पूजा' शब्द का अर्थ सत्कार है और दिन रात में जब-जब प्रथम मिलें वा पृथक् हों तब-तब प्रीतिपूर्वक 'नमस्ते' एक दूसरे से करें।

सदा प्रहृष्टया भाव्यं गृहकार्येषु दक्षया।

सुसंस्कृतोपस्करया व्यये चामुक्तहस्तया ॥ मनु० ॥

स्त्री को योग्य है कि अतिप्रसन्नता से घर के कामों में चतुराईयुक्त सब पदार्थों के उत्तम संस्कार, घर की शुद्धि और व्यय अत्यन्त उदार न रहें अर्थात् सब चीजें पवित्र और पाक इस प्रकार बनावें जो अप्रियरूप होकर शरीर वा आत्मा में रोग को न आने देवे। जो-जो व्यय हो उस का हिसाब यथावत् रखके पति आदि को सुना दिया करे। घर के नौकर चाकरों से यथायोग्य काम लेवे। घर के किसी काम को बिगड़ने न देवे।

स्त्रियो रत्नान्यथो विद्या सत्यं शौचं सुभाषितम्।

विविधानि च शिल्पानि समादेयानि सर्वतः ॥ मनु० ॥

उत्तम स्त्री, नाना प्रकार के रत्न, विद्या, सत्य, पवित्रता, श्रेष्ठभाषण और नाना प्रकार की शिल्पविद्या अर्थात् कारीगरी सब देश तथा सब मनुष्यों से ग्रहण करे।

सत्यं ब्रूयात्प्रियं ब्रूयात् प्रसन्नं ब्रूयात् सत्यमप्रियम्।

प्रियं च नानुत्तं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः ॥ १ ॥

भद्रं भद्रमिति ब्रूयाद्भद्रमित्येव वा वदेत्।

शुष्कवैरं विवादं च न कुर्यात् केनचित्सह ॥ २ ॥ मनु० ॥

सदा प्रिय सत्य दूसरे का हितकारक बोले अप्रिय सत्य अर्थात् काणे को काणा न बोले। अनृत अर्थात् झूठ दूसरे को प्रसन्न करने के अर्थ न बोले ॥१॥

सदा भद्र अर्थात् सब के हितकारी वचन बोला करे। शुष्कवैर अर्थात् विना अपराध किसी के साथ विरोध वा विवाद न करे ॥ २ ॥ जो-जो दूसरे का हितकर हो और बुरा भी माने तथापि कहे विना न रहै।

पुरुषा बहवो राजन् सततं प्रियवादिनः।

अप्रियस्य तु पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः ॥ -उद्योगपर्व-विदुरनीति० ॥

हे धृतराष्ट्र ! इस संसार में दूसरे को निरन्तर प्रसन्न करने के लिये प्रिय बोलने वाले प्रशंसक लोग बहुत हैं परन्तु सुनने में अप्रिय विदित हो और वह कल्याण करनेवाला वचन हो उस का कहने और सुननेवाला पुरुष दुर्लभ है। क्योंकि सत्पुरुषों को योग्य है कि मुख के सामने दूसरे का दोष कहना और अपना दोष सुनना, परोक्ष में दूसरे के गुण सदा कहना। और दुष्टों की यही रीति है कि सम्मुख में गुण कहना

और परोक्ष में दोषों का प्रकाश करना। जब तक मनुष्य दूसरे से अपने दोष नहीं सुनता वा कहने वाला नहीं कहता तब तक मनुष्य दोषों से छूटकर गुणी नहीं हो सकता।

कभी किसी की निन्दा न करे। जैसे—‘गुणेषु दोषारोपणमसूया’ अर्थात् ‘दोषेषु गुणारोपणमप्यसूया,’ ‘गुणेषु गुणारोपणं दोषेषु दोषारोपणं च स्तुतिः’ जो गुणों में दोष, दोषों में गुण लगाना वह निन्दा और गुणों में गुण, दोषों में दोषों का कथन करना स्तुति कहाती है। अर्थात् मिथ्याभाषण का नाम निन्दा और सत्यभाषण का नाम स्तुति है।

बुद्धिवृद्धिकराण्याशु धन्यानि च हितानि च ।
नित्यं शास्त्राण्यवेक्षेत निगमांश्चैव वैदिकान् ॥ १ ॥
यथा यथा हि पुरुषः शास्त्रं समधिगच्छति ।
तथा तथा विजानाति विज्ञानं चास्य रोचते ॥ २ ॥ मनु० ॥

जो शीघ्र बुद्धि, धन और हित की वृद्धि करनेवाले शास्त्र और वेद हैं उन को नित्य सुनें और सुनावें। ब्रह्मचर्याश्रम में पढ़ें हों उनको स्त्री पुरुष नित्य विचारा और पढ़ाया करें ॥ १ ॥ क्योंकि जैसे-जैसे मनुष्य शास्त्रों को यथावत् जानता है वैसे-वैसे उस विद्या का विज्ञान बढ़ता जाता और उसी में रुचि बढ़ती रहती है ॥ २ ॥

ऋषियज्ञं देवयज्ञं भूतयज्ञं च सर्वदा ।
नृयज्ञं पितृयज्ञं च यथाशक्ति न हापयेत् ॥ १ ॥
अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञश्च तर्पणम् ।
होमो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम् ॥ २ ॥
स्वाध्यायेनार्चयेतर्षीन् होमैर्देवान् यथाविधि ।
पितृन् श्राद्धैश्च नृनन्तैश्चानि बलिकर्मणा ॥ ३ ॥ मनु० ॥

दो यज्ञ ब्रह्मचर्य में सिद्ध आये वे अर्थात् एक वेदादि शास्त्रों को पढ़ना पढ़ाना, सन्ध्योपासन, योगाभ्यास। दूसरा देवयज्ञ—विद्वानों का संग, सेवा, पवित्रता, दिव्य गुणों का धारण, दयात्व, विद्या की उन्नति करना है, ये दोनों यज्ञ सायं प्रातः करने होते हैं।

सायंसायं गृहपतिर्नो अग्निः प्रातः प्रातः सौमनसस्य द्वाता ॥१॥
प्रातः प्रातर्गृहपतिर्नो अग्निः सायंसायं सौमनसस्य द्वाता ॥२॥

—अ० कां० १९। अनु० ७। मं० ३। ४ ॥

तस्मादहोरात्रस्य संयोगे ब्राह्मणः सन्ध्यामुपासीत ।
उद्यन्तमस्तं यान्तम् आदित्यम् अभिध्यायन् ॥ ३ ॥ ब्राह्मणे ॥
न तिष्ठति तु यः पूर्वा नोपास्ते यस्तु पश्चिमाम् ।
स साधुभिर्बहिष्कार्यः सर्वस्माद् द्विजकर्मणः ॥ ४ ॥ मनु० ॥

जो सन्ध्या-सन्ध्या काल में होम होता है वह हुतद्रव्य प्रातःकाल तक वायुशुद्धि द्वारा सुखकारी होता है ॥ १ ॥ जो अग्नि में प्रातः-प्रातःकाल में होम किया जाता है वह-वह हुतद्रव्य सायङ्काल पर्यन्त वायु के शुद्धि द्वारा बल बुद्धि और आरोग्यकारक होता है ॥ २ ॥ इसलिये दिन और रात्रि के सन्धि में अर्थात् सूर्योदय और अस्त समय में परमेश्वर का ध्यान और अग्निहोत्र अवश्य करना चाहिये ॥ ३ ॥

और जो ये दोनों काम सायं और प्रातःकाल में न करे उस को सज्जन लोग सब द्विजों के कर्मों से बाहर निकाल देवें अर्थात् उसे शूद्रवत् समझें ॥ ४ ॥

(प्रश्न) त्रिकाल सन्ध्या क्यों नहीं करना ?

(उत्तर) तीन समय में सन्धि नहीं होती। प्रकाश और अन्धकार की सन्धि भी सायं प्रातः दो ही वेला में होती है। जो इस को न मानकर मध्याह्नकाल में तीसरी सन्ध्या माने वह मध्यरात्रि में भी सन्ध्योपासन क्यों न करे? जो मध्यरात्रि में भी करना चाहै तो प्रहर-प्रहर घड़ी-घड़ी पल-पल और क्षण-क्षण की भी सन्धि होती है, उनमें भी सन्ध्योपासन किया करे। जो ऐसा भी करना चाहै तो हो ही नहीं सकता। और किसी शास्त्र का मध्याह्नसन्ध्या में प्रमाण भी नहीं। इसलिये दोनों कालों में सन्ध्या और अग्निहोत्र करना समुचित है, तीसरे काल में नहीं। और जो तीन काल होते हैं वे भूत, भविष्यत् और वर्तमान के भेद से हैं, सन्ध्योपासन के भेद से नहीं।

तीसरा 'पितृयज्ञ' अर्थात् जिस में जो देव विद्वान् ऋषि जो पढ़ने-पढ़ाने हारे, पितर माता पिता आदि वृद्ध ज्ञानी और परमयोगियों की सेवा करनी। पितृयज्ञ के दो भेद हैं एक श्राद्ध और दूसरा तर्पण। श्राद्ध अर्थात् 'श्रत्' सत्य का नाम है 'श्रत्सत्यं दधाति यया क्रियया सा श्रद्धा श्रद्धया यत्क्रियते तच्छ्राद्धम्' जिस क्रिया से सत्य का ग्रहण किया जाय उस को श्राद्ध और जो श्रद्धा से कर्म किया जाय उसका नाम श्राद्ध है। और 'तृप्यन्ति तर्पयन्ति येन पितृन् तत्तर्पणम्' जिस-जिस कर्म से तृप्त अर्थात् विद्यमान माता पितादि पितर प्रसन्न हों और प्रसन्न किये जायें उस का नाम तर्पण है। परन्तु यह जीवित के लिये है मृतकों के लिये नहीं।

ओं ब्रह्मादयो देवास्तृप्यन्ताम्। ब्रह्मादिदेवपत्न्यस्तृप्यन्ताम्।

ब्रह्मादिदेवसुतास्तृप्यन्ताम्। ब्रह्मादिदेवगणास्तृप्यन्ताम्॥ इति देवतर्पणम् ॥

'विद्वान्शंसो हि देवाः।'

यह शतपथ ब्राह्मण का वचन है।

जो विद्वान् हैं उन्हीं को देव कहते हैं। जो साङ्गोपाङ्ग चार वेदों के जानने वाले हों उन का नाम ब्रह्म और जो उन से न्यून पढ़े हों उन का भी नाम देव अर्थात् विद्वान् है। उनके सदृश विदुषी स्त्री, उनकी ब्रह्मणी और देवी, उनके तुल्य पुत्र और शिष्य तथा उनके सदृश उन के गण अर्थात् सेवक हों उन की सेवा करना है उस का नाम 'श्राद्ध' और 'तर्पण' है।

अथर्षितर्पणम्

ओं मरीच्यादय ऋषयस्तृप्यन्ताम्। मरीच्यादृषिपत्न्यस्तृप्यन्ताम्।
मरीच्यादृषिसुतास्तृप्यन्ताम्। मरीच्यादृषिगणास्तृप्यन्ताम्॥ इति ऋषितर्पणम् ॥

जो ब्रह्मा के प्रपौत्र मरीचिवत् विद्वान् होकर पढ़ावें और जो उनके सदृश विद्यायुक्त उनकी स्त्रियां कन्याओं को विद्यादान देवें उनके तुल्य पुत्र और शिष्य तथा उन के समान उनके सेवक हों, उन का सेवन सत्कार करना ऋषितर्पण है।

अथ पितृतर्पणम्

ओं सोमसदः पितरस्तृप्यन्ताम्। अग्निष्वात्ताः पितरस्तृप्यन्ताम्। बर्हिषदः
पितरस्तृप्यन्ताम्। सोमपाः पितरस्तृप्यन्ताम्। हविर्भुजः पितरस्तृप्यन्ताम्। आज्यपाः
पितरस्तृप्यन्ताम्। यमादिभ्यो नमः यमादींस्तर्पयामि। पित्रे स्वधा नमः पितरं
तर्पयामि। पितामहाय स्वधा नमः पितामहं तर्पयामि। मात्रे स्वधा नमो मातरं

तर्पयामि । पितामहौ स्वधा नमः पितामहीं तर्पयामि । स्वपत्न्यै स्वधा नमः स्वपत्नीं तर्पयामि । सम्बन्धिभ्यः स्वधा नमः सम्बन्धींस्तर्पयामि । सगोत्रेभ्यः स्वधा नमः सगोत्रांस्तर्पयामि ॥ इति पितृतर्पणम् ॥

‘ये सोमे जगदीश्वरे पदार्थविद्यायां च सीदन्ति से सोमसदः’ जो परमात्मा और पदार्थ विद्या में निपुण हों वे सोमसद । ‘यैरग्नेर्विद्युतो विद्या गृहीता ते अग्निष्वात्ताः’ जो अग्नि अर्थात् विद्युदादि पदार्थों के जानने वाले हों वे अग्निष्वात्त । ‘ये बर्हिषि उत्तमे व्यवहारे सीदन्ति ते बर्हिषदः’ जो उत्तम विद्यावृद्धियुक्त व्यवहार में स्थित हों वे बर्हिषद । ‘ये सोममैश्वर्यमौषधीरसं वा पान्ति पिबन्ति वा ते सोमपाः’ जो ऐश्वर्य के रक्षक और महौषधि रस का पान करने से रोगरहित और अन्य के ऐश्वर्य के रक्षक औषधों को देके रोगनाशक हों वे सोमपा । ‘ये हविर्होतुमत्तुमर्हं भुञ्जते भोजयन्ति वा ते हविर्भुजः’ जो मादक और हिंसाकारक द्रव्यों को छोड़ के भोजन करनेहारे हों वे हविर्भुज । ‘य आज्यज्ञातुं प्राप्तुं वा योग्यं रक्षन्ति वा पिबन्ति त आज्यपाः’ जो जानने के योग्य वस्तु के रक्षक और घृत दुग्धादि खाने और पीनेहारे हों वे आज्यपा । ‘शोभते कालो विद्यते येषान्ते सुकालिनः’ जिन का अच्छा धर्म करने का सुखरूप समय हो वे सुकालिन् । ‘ये दुष्टान् यच्छन्ति निगृह्णन्ति ते यमा न्यायाधीशः’ जो दुष्टों को दण्ड और श्रेष्ठों का पालन करनेहारे न्यायकारी हों वे यम । ‘यः पाति स पिता’ जो सन्तानों का अन्न और सत्कार से रक्षक वा जनक हो वह पिता । ‘पितुः पिता पितामहः, पितामहस्य पिता प्रपितामहः’ जो पिता का पिता हो वह पितामह और जो पितामह का पिता हो वह प्रपितामह । ‘या मानस्येति सा माता’ जो अन्न और सत्कारों से सन्तानों का मान्य करे वह माता । ‘या पितुर्माता सा पितामही पितामहस्य माता प्रपितामही’ जो पिता की माता हो वह पितामही और पितामह की माता हो वह प्रपितामही । अपनी स्त्री तथा भोजनी सम्बन्धी और एक गोत्र के तथा अन्य कोई भद्र पुरुष वा वृद्ध हों उन सब को अत्यन्त श्रद्धा से उत्तम अन्न, वस्त्र, सुन्दर यान आदि देकर अच्छे प्रकार की तृप्त करना अर्थात् जिस-जिस कर्म से उनका आत्मा तृप्त और शरीर स्वस्थ रहे उस-उस कर्म से प्रीतिपूर्वक उनकी सेवा करनी वह श्राद्ध और तर्पण कहता है ।

चौथा वैश्वदेव—अर्थात् जब भोजन सिद्ध हो तब जो कुछ भोजनार्थ बने, उसमें से खट्टा लवणान्न और क्षार को छोड़ के घृत मिष्टयुक्त अन्न लेकर चूल्हे से अग्नि अलग धर निम्नलिखित मन्त्रों से आहुति और भाग करे ।

वैश्वदेवस्य सिद्धस्य गृहोऽग्नौ विधिपूर्वकम् ।

आभ्यः कुय्यद्विवताभ्यो ब्राह्मणो होममन्वहम् ॥ मनु० ॥

जो कुछ पाकशाला में भोजनार्थ सिद्ध हो, उस का दिव्य गुणों के अर्थ उसी पाकाग्नि में निम्नलिखित मन्त्रों से विधिपूर्वक होम नित्य करे ।

होम के मन्त्र

ओम् अग्नये स्वाहा । सोमाय स्वाहा । अग्नीषोमाभ्यां स्वाहा । विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा । धन्वन्तरये स्वाहा । कुह्वै स्वाहा । अनुमत्यै स्वाहा । प्रजापतये स्वाहा । सह द्यावापृथिवीभ्यां स्वाहा । स्विष्टकृते स्वाहा ।

इन प्रत्येक मन्त्रों से एक-एक बार आहुति प्रज्वलित अग्नि में छोड़े । पश्चात्

थाली अथवा भूमि में पत्ता रख के पूर्व दिशादि क्रमानुसार यथाक्रम इन मन्त्रों से भाग रक्खे-

ओं सानुगायेन्द्राय नमः। सानुगाय यमाय नमः। सानुगाय वरुणाय नमः। सानुगाय सोमाय नमः। मरुद्भ्यो नमः। अद्भ्यो नमः। वनस्पतिभ्यो नमः। श्रियै नमः। भद्रकाल्यै नमः। ब्रह्मपतये नमः। वास्तुपतये नमः। विश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः। दिवाचरेभ्यो भूतेभ्यो नमः। नक्तञ्चारिभ्यो भूतेभ्यो नमः। सर्वात्मभूतये नमः ॥

इन भागों को जो कोई अतिथि हो तो उस को जिमा देवे अथवा अग्नि में छोड़ देवे। इनके अनन्तर लवणान्न अर्थात् दाल, भात, शाक, रोटी आदि लेकर छः भाग भूमि में धरे। इसमें प्रमाण-

शुनां च पतितानां च श्वपचां पापरोगिणाम्।

वायसानां कृमीणां च शनकैर्निर्वपेद् भुवि ॥ मनु० ॥

इस प्रकार 'श्वभ्यो नमः, पतितेभ्यो नमः, श्वपचांभ्यो नमः, पापरोगिभ्यो नमः, वायसेभ्यो नमः, कृमिभ्यो नमः।' धर कर पश्चात् किसी दुःखी बुभुक्षित प्राणी अथवा कुत्ते, कौवे आदि को दे देवे।

यहां नमः शब्द का अर्थ अन्न अर्थात् दाल, पापी, चाण्डाल, पापरोगी कौवे और कृमि अर्थात् चींटी आदि को अन्न देना यह मनुस्मृति आदि की विधि है।

हवन करने का प्रयोजन यह है कि—पाकशालास्थ वायु का शुद्ध होना और जो अज्ञात अदृष्ट जीवों की हत्या होती है उस का प्रत्युपकार कर देना।

अब पांचवीं अतिथिसेवा—अतिथि उस को कहते हैं कि जिस की कोई तिथि निश्चित न हो अर्थात् अकस्मात् धार्मिक, सत्योपदेशक, सब के उपकारार्थ सर्वत्र घूमने वाला, पूर्ण विद्वान्, योगमयोगी, संन्यासी गृहस्थ के यहां आवे तो उस को प्रथम पाद्य, अर्घ और अचिन्नीय तीन प्रकार का जल देकर, पश्चात् आसन पर सत्कारपूर्वक बिठाल कर, खान, पान आदि उत्तमोत्तम पदार्थों से सेवा शुश्रूषा कर के, उन को प्रसन्न करे। पश्चात् सत्सङ्ग कर उन से ज्ञान विज्ञान आदि जिन से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति होवे ऐसे-ऐसे उपदेशों का श्रवण करे और चाल चलन भी उनके सदुपदेशानुसार रक्खे। समय पाके गृहस्थ और राजादि भी अतिथिवत् सत्कार करने योग्य हैं। परन्तु—

पाषण्डिनो विकर्मस्थान् वैडालवृत्तिकान् शठान्।

हैतुकान् वकवृत्तींश्च वाङ्मात्रेणापि नार्चयेत् ॥ मनु० ॥

(पाषण्डी) अर्थात् वेदनिन्दक, वेदविरुद्ध आचरण करनेहारे (विकर्मस्थ) जो वेदविरुद्ध कर्म का कर्ता मिथ्याभाषणादि युक्त, वैडालवृत्तिक जैसे विडाला छिप और स्थिर होकर ताकता-ताकता भ्रूपट से मूषे आदि प्राणियों को मार अपना पेट भरता है वैसे जनों का नाम वैडालवृत्ति, (शठ) अर्थात् हठी, दुराग्रही, अभिमानी, आप जानें नहीं, औरों का कहा मानें नहीं, (हैतुक) कुतर्की व्यर्थ बकने वाले जैसे कि आजकल के वेदान्ती बकते हैं 'हम ब्रह्म और जगत् मिथ्या है वेदादि शास्त्र और ईश्वर भी कल्पित हैं' इत्यादि गपोड़ा हांकने वाले (वकवृत्ति) जैसे वक एक पैर उठा ध्यानावस्थित के समान होकर झट मच्छी के प्राण हरके अपना स्वार्थ सिद्ध करता है वैसे आजकल के वैरागी और खाखी आदि हठी दुराग्रही वेदविरोधी

हैं, ऐसों का सत्कार वाणीमात्र से भी न करना चाहिये। क्योंकि इनका सत्कार करने से ये वृद्धि को पाकर संसार को अधर्मयुक्त करते हैं। आप तो अवनति के काम करते ही हैं परन्तु साथ में सेवक को भी अविद्यारूपी महासागर में डुबा देते हैं।

इन **पांच महायज्ञों का फल** यह है कि ब्रह्मयज्ञ के करने से विद्या, शिक्षा, धर्म, सभ्यता आदि शुभ गुणों की वृद्धि।

अग्निहोत्र से वायु, वृष्टि, जल की शुद्धि होकर वृष्टि द्वारा संसार को सुख प्राप्त होना अर्थात् शुद्ध वायु का श्वास, स्पर्श, खान पान से आरोग्य, बुद्धि, बल, पराक्रम बढ़ के **धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का अनुष्ठान पूरा होना**। इसीलिये इस को देवयज्ञ कहते हैं।

पितृयज्ञ से जब माता पिता और ज्ञानी माहात्माओं की सेवा करेगा तब उस का ज्ञान बढ़ेगा। उस से सत्यासत्य का निर्णय कर सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग करके सुखी रहेगा। दूसरा कृतज्ञता अर्थात् जैसी सेवा माता पिता और आचार्य ने सन्तान और शिष्यों की की है उसका बदला देना उचित ही है।

बलिवैश्वदेव का भी फल जो पूर्व कह आया, वही है।

जब तक उत्तम अतिथि जगत् में नहीं होते तब तक उन्नति भी नहीं होती। उनके सब देशों में घूमने और सत्योपदेश करने से पाखण्ड की वृद्धि नहीं होती और सर्वत्र गृहस्थों को सहज से सत्य विज्ञान की प्राप्ति होती रहती है और मनुष्यमात्र में एक ही धर्म स्थिर रहता है। विना अतिथियों के सन्देहनवृत्ति नहीं होती। सन्देहनवृत्ति के विना दृढ़ निश्चय भी नहीं होता। निश्चय के विना सुख कहाँ?—

ब्राह्मे मुहूर्त्तं बुध्येत धर्मार्थौ ध्यानुचिन्तयेत्।

कायक्लेशाश्च तन्मूलान् वेदतत्त्वार्थमेव च ॥ मनु० ॥

रात्रि के चौथे प्रहर अथवा चार घड़ी रात से उठे। आवश्यक कार्य करके धर्म और अर्थ, शरीर के रोगों का निदान और परमात्मा का ध्यान करे। कभी अधर्म का आचरण न करे। क्योंकि—

नाधर्मश्चरितो लोकं सद्यः फलति गौरिव।

शनैरावर्त्तमानस्तु कर्त्तुर्मूलानि कृन्तति ॥ मनु० ॥

किया हुआ अधर्म निष्फल कभी नहीं होता परन्तु जिस समय अधर्म करता है उसी समय फल भी नहीं होता। इसलिये अज्ञानी लोग अधर्म से नहीं डरते। तथापि निश्चय जानो कि वह अधर्माचरण धीरे-धीरे तुम्हारे सुख के मूलों को काटता चला जाता है। इस क्रम से—

अधर्मैणैधते तावत्ततो भद्राणि पश्यति।

ततः सपत्नाञ्जयति समूलस्तु विनश्यति ॥ मनु० ॥

जब अधर्मात्मा मनुष्य धर्म की मर्यादा छोड़ (जैसे तालाब के बन्ध तोड़ जल चारों ओर फैल जाता है वैसे) मिथ्याभाषण, कपट, पाखण्ड अर्थात् रक्षा करने वाले वेदों का खण्डन और विश्वासघातादि कर्मों से पराये पदार्थों को लेकर प्रथम बढ़ता है। पश्चात् धनादि ऐश्वर्य से खान, पान, वस्त्र, आभूषण, यान, स्थान, मान, प्रतिष्ठा को प्राप्त होता है। अन्याय से शत्रुओं को भी जीतता है, पश्चात् शीघ्र नष्ट हो जाता है। जैसे जड़ काटा हुआ वृक्ष नष्ट हो जाता है वैसे अधर्मी नष्ट भ्रष्ट हो जाता है।

सत्यधर्मार्यवृत्तेषु शौचे चैवारमेत् सदा ।

शिष्यांश्च शिष्याद्धर्मेण वाग्बाहूदरसंयतः ॥ मनु० ॥

वेदोक्त सत्य धर्म अर्थात् पक्षपातरहित होकर सत्य के ग्रहण और असत्य के परित्याग न्यायरूप वेदोक्त धर्मादि, आर्य अर्थात् उत्तम पुरुषों के गुण, कर्म, स्वभाव और पवित्रता ही में सदा रमण करे। वाणी बाहू उदर आदि अङ्गों का संयम अर्थात् धर्म में चलाता हुआ धर्म से शिष्यों को शिक्षा किया करे।

ऋत्विक्पुरोहिताचार्यैर्मातुलातिथिसंश्रितैः ।

बालवृद्धातुरैर्वैद्यैर्जातिसम्बन्धिबान्धवैः ॥ १ ॥

मातापितृभ्यां यामिभिर्भ्रात्रा पुत्रेण भार्यया ।

दुहित्रा दासवर्गेण विवादं न समाचरेत् ॥ २ ॥ मनु० ॥

(ऋत्विक्) यज्ञ का करनेहारा, (पुरोहित) सदा उत्तम चलन की शिक्षा कारक, (आचार्य) विद्या पढ़ानेहारा, (मातुल) मामा, (आतिथ) अर्थात् जिस की कोई आने जाने की निश्चित तिथि न हो (संश्रित) अपने आश्रित (बाल) बालक (वृद्ध) बुढ़े (आतुर) पीड़ित (वैद्य) आयुर्वेद का ज्ञाता, (जाति) स्वगोत्र वा स्ववर्णस्थ, (सम्बन्धी) श्वशुर आदि, (बान्धव) मित्र ॥ १ ॥ (माता) माता, (पिता) पिता, (यामि) बहिन, (भ्राता) भाई, (पुत्र) पुत्र, (भार्या) स्त्री, (दुहिता) पुत्री और सेवक लोगों से विवाद अर्थात् विरुद्ध लड़ाई-बखेड़ा कभी न करे ॥ २ ॥

अतपास्त्वनधीयानः प्रतिग्रहरुचिर्द्विजः ।

अम्भस्यश्मप्लवेनैव सह तैर्नैव मज्जति ॥ २ ॥ मनु० ॥

एक (अतपाः) ब्रह्मचर्य्य सत्यभाषणादि तपरहित, दूसरा (अनधीयानः) विना पढ़ा हुआ, तीसरा (प्रतिग्रहरुचिः) अत्यन्त धर्मार्थ दूसरों से दान लेनेवाला, ये तीनों पत्थर की नौका से समुद्र में तरने के समान अपने दुष्ट कर्मों के साथ ही दुःखसागर में डूबते हैं। वे तो डूबते ही हैं परन्तु दाताओं को साथ डुबा लेते हैं।

त्रिष्वप्येतेषु दत्तं हि विधिनाप्यर्जितं धनम् ।

दातुर्भवत्यनर्थाय परत्रादातुरेव च ॥ मनु० ॥

जो धर्म से प्राप्त हुए धन का उक्त तीनों को देना है वह दानदाता का नाश इसी जन्म और लेनेवाले का नाश परजन्म में करता है।

जो वे ऐसे हों तो क्या हो—

यथा प्लवेनौपलेन निमज्जत्युदके तरन् ।

तथा निमज्जतोऽधस्तादज्ञौ दातृप्रतीच्छकौ ॥ मनु० ॥

जैसे पत्थर की नौका में बैठ के जल में तरने वाला डूब जाता है वैसे अज्ञानी दाता और ग्रहीता दोनों अधोगति अर्थात् दुःख को प्राप्त होते हैं।

पाखण्डियों के लक्षण

धर्मध्वजी सदा लुब्धश्लोचिको लोकदम्भकः ।

वैदालव्रतिको ज्ञेयो हिंस्रः सर्वाभिसन्धकः ॥ १ ॥

अधोदृष्टिनैष्कृतिकः स्वार्थसाधनतत्परः ।

शठो मिथ्याविनीतश्च वक्रव्रतचरो द्विजः ॥ २ ॥ मनु० ॥

(धर्मध्वजी) धर्म कुछ भी न करे परन्तु धर्म के नाम से लोगों को ठगे (सदा लुब्धः) सर्वदा लोभ से युक्त (छाद्मिकः) कपटी (लोकदम्भकः) संसारी मनुष्यों के सामने अपनी बड़ाई के गपोड़े मारा करे (हिंस्रः) प्राणियों का घातक, अन्य से वैरबुद्धि रखनेवाला (सर्वाभिसन्धकः) सब अच्छे और बुरों से भी मेल रक्खे उस को वैदालव्रतिक अर्थात् विडाल के समान धूर्त और नीच समझो ॥ १ ॥ (अधोदृष्टिः) कीर्ति के लिये नीचे दृष्टि रक्खे (नैष्कृतिकः) ईर्ष्यक किसी ने उस का पैसा भर अपराध किया हो तो उसका बदला लेने को प्राण तक तत्पर रहै (स्वार्थसाधनतत्परः) चाहै कपट अधर्म विश्वासघात क्यों न हो; अपना प्रयोजन साधने में चतुर (शठः) चाहै अपनी बातें झूठी क्यों न हों परन्तु हठ कभी न छोड़े (मिथ्याविनीतः) झूठ मूँठ ऊपर से शील सन्तोष और साधुता दिखलावे उस को (वक्रव्रत) बगुले के समान नीच समझो। ऐसे-ऐसे लक्षणों वाले पाखण्डी होते हैं, उन का विश्वास व सेवा कभी न करें ॥ २ ॥

धर्म शनैः सञ्चिन्याद् वल्मीकमिव पुत्तिकाः
परलोकसहायार्थं सर्वलोकान्यपीडयन् ॥ १ ॥
नामुत्र हि सहायार्थं पिता माता च तिष्ठतः।
न पुत्रदारं न ज्ञातिर्धर्मस्तिष्ठति केवलः ॥ २ ॥
एकः प्रजायते जन्तुरेक एव प्रलीयते।
एको नु भुङ्क्ते सुकृतमेक एव दुष्कृतम् ॥ ३ ॥
एकः पापानि कुरुते फलं भुङ्क्ते महाजनः।
भोक्तारो विप्रमुच्यन्ते कर्त्ता दोषेण लिप्यते ॥ ४ ॥
मृतं शरीरमुत्सृज्य काष्ठलोष्ठसमं क्षितौ।
विमुखा बान्धवा यानि धर्मस्तमनुगच्छति ॥ मनु० ॥

स्त्री और पुरुष को चाहिये कि जैसे पुत्तिका अर्थात् दीमक वल्मीक अर्थात् बांबी को बनाती है वैसे सन्त भूतों को पीड़ा न देकर परलोक अर्थात् परजन्म के सुखार्थ धीरे-धीरे धर्म का सञ्चय करे ॥ १ ॥ क्योंकि परलोक में न माता न पिता न पुत्र न स्त्री न ज्ञाति सहाय कर सकते हैं किन्तु एक धर्म ही सहायक होता है ॥ २ ॥ देखिये अकेला ही लोभ जन्म और मरण को प्राप्त होता, एक ही धर्म का फल सुख और अधर्म का जो दुःख रूप फल उस को भोगता है ॥ ३ ॥ यह भी समझ लो कि कुटुम्ब में एक पुरुष पाप करके पदार्थ लाता है और महाजन अर्थात् कुटुम्ब उस को भोक्ता है। भोगनेवाले दोषभागी नहीं होते किन्तु अधर्म का कर्त्ता ही दोष का भागी होता है ॥ ४ ॥ जब कोई किसी का सम्बन्धी मर जाता है उस को मट्टी के ढेले के समान भूमि में छोड़ कर पीठ दे बन्धुवर्ग विमुख होकर चले जाते हैं। कोई उसके साथ जानेवाला नहीं होता किन्तु एक धर्म ही उस का सङ्गी होता है ॥ ५ ॥

तस्माद्धर्मसहायार्थं नित्यं सञ्चिन्याच्छनैः।
धर्मेण ही सहायेन तमस्तरति दुस्तरम् ॥ १ ॥
धर्मप्रधानं पुरुषं तपसा हतकिल्बिषम्।
परलोकं नयत्याशु भास्वतं खशरीरिणम् ॥ २ ॥ मनु० ॥

उस हेतु से परलोक अर्थात् परजन्म में सुख और इस जन्म के सहायतार्थ नित्य धर्म का सञ्चय धीरे-धीरे करता जाय क्योंकि धर्म ही के सहाय से बड़े-बड़े

दुस्तर दुःखसागर को जीव तर सकता है ॥ १ ॥ किन्तु जो पुरुष धर्म ही को प्रधान समझता है जिस का धर्म के अनुष्ठान से कर्तव्य पाप दूर हो गया उस को प्रकाशस्वरूप और आकाश जिस का शरीरवत् है उस परलोक अर्थात् परमदर्शनीय परमात्मा को धर्म ही शीघ्र प्राप्त कराता है ॥ २ ॥ इसलिये—

दृढकारी मृदुर्दान्तः क्रूराचारैरसंवसन् ।
अहिंस्रो दमदानाभ्यां जयेत्स्वर्गं तथा व्रतः ॥ १ ॥
वाच्यर्था नियताः सर्वे वाङ्मूला वाग्विनिःसृताः ।
तां तु यः स्तेनयेद्वाचं स सर्वस्तेयकृन्नुः ॥ २ ॥
आचाराल्लभते ह्यायुराचारादीप्सिताः प्रजाः ।
आचाराद्धनमक्षय्यमाचारो हन्त्यलक्षणम् ॥ ३ ॥ मनु० ॥

सदा दृढकारी, कोमल स्वभाव, जितेन्द्रिय, हिंसक, क्रूर, दुष्टाचारी पुरुषों से पृथक् रहनेहारा धर्मात्मा मन को जीत और विद्यादि दान से सुख को प्राप्त होवे ॥ १ ॥ परन्तु यह भी ध्यान में रखें कि जिस वाणी में सब अर्थ अर्थात् व्यवहार निश्चित होते हैं वह वाणी ही उन का मूल और वाणी ही से सब व्यवहार सिद्ध होते हैं उस वाणी को जो चोरता अर्थात् मिथ्याभाषण करता है वह सब चोरी आदि पापों का करने वाला है ॥ २ ॥ इसलिये मिथ्याभाषणादिरूप अधर्म को छोड़ जो धर्माचार अर्थात् ब्रह्मचर्य जितेन्द्रियता से पूर्ण आयु और धर्माचार से उत्तम प्रजा तथा अक्षय धन को प्राप्त होता है तथा जो धर्माचार में धर्तकर दुष्ट लक्षणों का नाश करता है; उसके आचरण को सदा किया करे ॥ ३ ॥ क्योंकि—

दुराचारो हि पुरुषो लोके भवति निन्दितः ।
दुःखभागी च सततं व्याधितोऽल्पायुरेव च ॥ मनु० ॥

जो दुष्टाचारी पुरुष है वह संसार में सज्जनों के मध्य में निन्दा को प्राप्त दुःखभागी और निरन्तर व्याधित होकर अल्पायु का भी भोगनेहारा होता है। इसलिये ऐसा प्रयत्न करे—

यद्यत्परवशं कर्म तत्तद्यत्नेन वर्जयेत् ।
यद्यदात्मवशं तु स्यात्तत्तत्सेवेत यत्नतः ॥ १ ॥
सर्वं परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम् ।
एतद्विद्यात्ममासेन लक्षणं सुखदुःखयोः ॥ २ ॥ मनु० ॥

जो-जो पराधीन कर्म हो उस-उस का प्रयत्न से त्याग और जो जो स्वाधीन कर्म हो उस-उस का प्रयत्न के साथ सेवन करे ॥ १ ॥

क्योंकि जो-जो पराधीनता है वह-वह सब दुःख और जो-जो स्वाधीनता है वह-वह सब सुख यही संक्षेप से सुख और दुःख के लक्षण जानना चाहिये ॥ २ ॥

परन्तु जो एक दूसरे के आधीन काम है वह-वह आधीनता से ही करना चाहिये जैसा कि स्त्री और पुरुष का एक दूसरे के आधीन व्यवहार। अर्थात् स्त्री पुरुष का और पुरुष स्त्री का परस्पर प्रियाचरण अनुकूल रहना व्यभिचार वा विरोध कभी न करना। पुरुष की आज्ञानुकूल घर के काम स्त्री और बाहर के काम पुरुष के आधीन रहना, दुष्ट व्यसन में फँसने से एक दूसरे को रोकना अर्थात् यही निश्चय जानना।

जब विवाह होवे तब स्त्री के हाथ पुरुष और पुरुष के हाथ स्त्री बिक चुकी

अर्थात् जो स्त्री और पुरुष के साथ हाव, भाव, नखशिखाग्रपर्यन्त जो कुछ हैं वह वीर्यादि एक दूसरे के आधीन हो जाता है।

स्त्री वा पुरुष प्रसन्नता के विना कोई भी व्यवहार न करें। इन में बड़े अप्रियकारक व्यभिचार, वेश्या, परपुरुषगमनादि काम हैं। इन को छोड़ के अपने पति के साथ स्त्री और स्त्री के साथ पति सदा प्रसन्न रहें।

जो ब्राह्मणवर्णस्थ हों तो पुरुष लड़कों को पढ़ावे तथा सुशिक्षिता स्त्री लड़कियों को पढ़ावे। नानाविध उपदेश और वक्तृत्व करके उन को विद्वान् करें। स्त्री का पूजनीय देव पति और पुरुष की पूजनीय अर्थात् सत्कार करने योग्य देवी स्त्री है।

जब तक गुरुकुल में रहें तब तक माता पिता के समान अध्यापकों को समझें और अध्यापक अपने सन्तानों के समान शिष्यों को समझें। प्रधानहारे अध्यापक और अध्यापिका कैसे होने चाहिये—

आत्मज्ञानं समारम्भस्तितिक्षा धर्मनित्यता ।
यमर्था नापकर्षन्ति स वै पण्डित उच्यते ॥ १ ॥
निषेवते प्रशस्तानि निन्दितानि न सेवते ।
अनास्तिकः श्रद्धान एतत्पण्डितलक्षणम् ॥ २ ॥
क्षिप्रं विजानाति चिरं शृणोति, विज्ञाय चार्थं भजते न कामात् ।
नासम्पृष्टो ह्युपयुङ्क्ते परार्थं, सत्प्रज्ञानं प्रथमं पण्डितस्य ॥ ३ ॥
नाप्राप्यमभिवाञ्छन्ति नष्टं नेच्छन्ति शोचितुम् ।
आपत्सु च न मुह्यन्ति नराः पण्डितबुद्धयः ॥ ४ ॥
प्रवृत्तवाक् चित्रकथ उद्वान् प्रतिभानवान् ।
आशु ग्रन्थस्य वक्ता सत्यः स पण्डित उच्यते ॥ ५ ॥
श्रुतं प्रज्ञानुगं यस्य प्रज्ञा चैव श्रुतानुगा ।
असम्भिन्नार्थमर्यादा पण्डिताख्यां लभत सः ॥ ६ ॥

—ये सब महाभारत उद्योगपर्व विदुरप्रजागर के श्लोक हैं।

अर्थ—जिसको आत्मज्ञान सम्यक् आरम्भ अर्थात् जो निकम्मा आलसी कभी न रहै; सुख दुःख, हानि लाभ, मानापमान, निन्दा स्तुति में हर्ष शोक कभी न करे; धर्म ही में नित्य निश्चित रहै; जिस के मन को उत्तम-उत्तम पदार्थ अर्थात् विषय सम्बन्धी वस्तु आकर्षण न कर सकें वही पण्डित कहाता है ॥ १ ॥

सदा धर्मयुक्त कर्मों का सेवन; अधर्मयुक्त कामों का त्याग; ईश्वर, वेद, सत्याचार की निन्दा न करनेहारा; ईश्वर आदि में अत्यन्त श्रद्धालु हो; वही पण्डित का कर्तव्याकर्तव्य कर्म है ॥ २ ॥

जो कठिन विषय को भी शीघ्र जान सके; बहुत कालपर्यन्त शास्त्रों को पढ़े सुने और विचारे; जो कुछ जाने उस को परोपकार में प्रयुक्त करे; अपने स्वार्थ के लिये कोई काम न करे; विना पूछे वा विना योग्य समय जाने दूसरे के अर्थ में सम्मति न दे। वही प्रथम प्रज्ञान पण्डित को होना चाहिये ॥ ३ ॥

जो प्राप्ति के अयोग्य की इच्छा कभी न करे; नष्ट हुए पदार्थ पर शोक न करे; आपत्काल में मोह को न प्राप्त अर्थात् व्याकुल न हो वही बुद्धिमान् पण्डित है ॥ ४ ॥

जो सदा सत्याचार में प्रवृत्त, जितेन्द्रिय और जिन का वीर्य अधःस्खलित कभी न हो उन्हीं का ब्रह्मचर्य सच्चा और वे ही विद्वान् होते हैं ॥ १ ॥ इसलिये शुभ लक्षणयुक्त अध्यापक और विद्यार्थियों को होना चाहिये।

अध्यापक लोग ऐसा यत्न किया करें जिस से विद्यार्थी लोग सत्यवादी, सत्यमानी, सत्यकारी सभ्यता, जितेन्द्रिय, सुशीलतादि शुभगुणयुक्त शरीर और आत्मा का पूर्ण बल बढ़ा के समग्र वेदादि शास्त्रों में विद्वान् हों। सदा उन की कुचेष्टा छुड़ाने में और विद्या पढ़ाने में चेष्टा किया करें और विद्यार्थी लोग सदा जितेन्द्रिय, शान्त, पढ़ानेहारों में प्रेम, विचारशील, परिश्रमी होकर ऐसा पुरुषार्थ करें जिस से पूर्ण विद्या, पूर्ण आयु, परिपूर्ण धर्म और पुरुषार्थ करना आ जाय इत्यादि ब्राह्मण वर्णों के काम हैं। क्षत्रियों का कर्म राजधर्म में कहेंगे।

जो वैश्य हों वे ब्रह्मचर्यादि से वेदादि विद्या पढ़ विद्वान् करने नाना देशों की भाषा, नाना प्रकार के व्यापार की रीति, उन के भाव बनाना, बेचना, खरीदना द्वीपद्वीपान्तर में जाना आना, लाभार्थ काम को आरम्भ करना, पशुपालन और खेती की उन्नति चतुराई से करनी करानी, धन को बढ़ाना, विद्या और धर्म की उन्नति में व्यय करना, सत्यवादी निष्कपटी होकर सत्यता से सब व्यापार करना, सब वस्तुओं की रक्षा ऐसी करनी जिस से कोई नष्ट न होना जावे।

शूद्र सब सेवाओं में चतुर, पाकविद्या में निपुण, अतिप्रेम से द्विजों की सेवा और उन्हीं से अपनी उपजीविका करे और द्विज लोग इसके खान, पान, वस्त्र, स्थान, विवाहादि में जो कुछ व्यय हो सब कुछ देवें अथवा मासिक कर देवें।

चारों वर्ण परस्पर प्रीति, उपकार, सज्जनता, सुख, दुःख, हानि, लाभ में ऐकमत्य रहकर राज्य और प्रजा की उन्नति में तन, मन, धन का व्यय करते रहें। स्त्री और पुरुष का वियोग कभी न होना चाहिए। क्योंकि—

पानं दुर्जनसंसर्गः प्रत्या च विरहोऽटनम्।

स्वप्नोऽन्यगेहवासश्च नारीसन्दूषणानि षट् ॥ मनु० ॥

मद्य, भांग आदि पादक द्रव्यों का पीना, दुष्ट पुरुषों का सङ्ग, पतिवियोग, अकेली जहां तहां व्यर्थ पाखण्डी आदि के दर्शन मिस से फिरती रहना और पराये घर में जाके शयन करना वा वास ये छः स्त्री को दूषित करने वाले दुर्गुण हैं और ये पुरुषों के भी हैं। पति और स्त्री का वियोग दो प्रकार का होता है—कहीं कार्यार्थ देशान्तर में जाना और दूसरा मृत्यु से वियोग होना इन में से प्रथम का उपाय यही है कि दूर देश में यात्रार्थ जावे तो स्त्री को भी साथ रक्खे। इस का प्रयोजन यह है कि बहुत समय तक वियोग न रहना चाहिये।

(प्रश्न) स्त्री और पुरुष का बहु विवाह होना योग्य है वा नहीं?

(उत्तर) युगपत् न अर्थात् एक समय में नहीं।

(प्रश्न) क्या समयान्तर में अनेक विवाह होने चाहियें?

(उत्तर) हां जैसे—

या स्त्री त्वक्षतयोनिः स्याद् गतप्रत्यागतापि वा।

पौनर्भवेन भर्त्रा सा पुनः संस्कारमर्हति ॥ मनु० ॥

जिस स्त्री वा पुरुष का पाणिग्रहणमात्र संस्कार हुआ हो और संयोग न हुआ हो अर्थात् अक्षतयोनि स्त्री और अक्षतवीर्य पुरुष हो, उनका अन्य स्त्री वा पुरुष

के साथ पुनर्विवाह होना चाहिये। किन्तु ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य वर्णों में क्षतयोनि स्त्री क्षतवीर्य पुरुष का पुनर्विवाह न होना चाहिये।

(प्रश्न) पुनर्विवाह में क्या दोष है?

(उत्तर) (पहला) स्त्री पुरुष में प्रेम न्यून होना क्योंकि जब चाहे तब पुरुष को स्त्री और स्त्री को पुरुष छोड़ कर दूसरे के साथ सम्बन्ध कर ले। (दूसरा) जब स्त्री वा पुरुष पति स्त्री मरने के पश्चात् दूसरा विवाह करना चाहें तब प्रथम स्त्री के वा पूर्व पति के पदार्थों को उड़ा ले जाना और उनके कुटुम्ब वालों का उन से भगड़ा करना (तीसरा) बहुत से भद्रकुल का नाम वा चिह्न भी न रह कर उसके पदार्थ छिन्न भिन्न हो जाना (चौथा) पतिव्रत और स्त्रीव्रत धर्म नष्ट होना इत्यादि दोषों के अर्थ द्विजों में पुनर्विवाह वा अनेक विवाह कभी न होने चाहिये।

(प्रश्न) जब वंशच्छेदन हो जाय तब भी उस का कुल नष्ट हो जायगा और स्त्री पुरुष व्यभिचारादि कर्म कर के गर्भपातनादि बहुत बुरे कर्म करेंगे इसलिये पुनर्विवाह होना अच्छा है।

(उत्तर) नहीं-नहीं क्योंकि जो स्त्री पुरुष ब्रह्मचर्य में स्थिर रहना चाहें तो कोई भी उपद्रव न होगा और जो कुल की परम्परा रखने के लिये किसी अपने स्वजाति का लड़का गोद ले लेंगे उस से कुल चलेगा और व्यभिचार भी न होगा और जो ब्रह्मचर्य न रख सकें तो नियोग करके सन्तानोत्पत्ति कर लें।

(प्रश्न) पुनर्विवाह और नियोग में क्या भेद है?

(उत्तर) (पहला) जैसे विवाह करने में कन्या अपने पिता का घर छोड़ पति के घर को प्राप्त होती है और पति से विशेष सम्बन्ध नहीं रहता और विधवा स्त्री उसी विवाहित पति के घर में रहती है। (दूसरा) उसी विवाहिता स्त्री के लड़के उसी विवाहित पति के दायभागी होते हैं और विधवा स्त्री के लड़के वीर्यदाता के न पुत्र कहलाते न उस का गोत्र जाता और न उस का स्वत्व उन लड़कों पर रहता किन्तु मृतपति के पुत्र बजते उसी का गोत्र रहता और उसी के पदार्थों के दायभागी होकर उसी घर में रहते हैं। (तीसरा) विवाहित स्त्री-पुरुष को परस्पर सेवा और पालन करना अवश्य है। और नियुक्त स्त्री-पुरुष का कुछ भी सम्बन्ध नहीं रहता। (चौथा) विवाहित स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध मरणपर्यन्त रहता और नियुक्त स्त्री-पुरुष का कार्य के पश्चात् छूट जाता है। (पांचवां) विवाहित स्त्री-पुरुष आपस में गृह के कार्यों की सिद्धि करने में यत्न किया करते और नियुक्त स्त्री-पुरुष अपने-अपने घर के काम किया करते हैं।

(प्रश्न) विवाह और नियोग के नियम एक से हैं वा पृथक्-पृथक् ?

(उत्तर) कुछ थोड़ा सा भेद है। जितने पूर्व कह आये और यह कि विवाहित स्त्री-पुरुष एक पति और एक ही स्त्री मिल के दश सन्तान तक उत्पन्न कर सकते हैं और नियुक्त स्त्री वा पुरुष दो वा चार से अधिक सन्तानोत्पत्ति नहीं कर सकते। अर्थात् जैसा कुमार कुमारी ही का विवाह होता है वैसे जिस की स्त्री वा पुरुष मर जाता है उन्हीं का नियोग होता है; कुमारी का नहीं। जैसे विवाहित स्त्री पुरुष सदा संग में रहते वैसे नियुक्त स्त्री पुरुष का व्यवहार नहीं किन्तु विना ऋतुदान के समय एकत्र न हों। जो स्त्री अपने लिये नियोग करे तो जब दूसरा गर्भ रहे उसी दिन से स्त्री पुरुष का सम्बन्ध छूट जाय और जो पुरुष अपने लिये करे तो भी दूसरे गर्भ रहने से सम्बन्ध छूट जाय। परन्तु वही नियुक्त स्त्री दो तीन वर्ष पर्यन्त

उन लड़कों का पालन करके नियुक्त पुरुष को दे देवे। ऐसे एक विधवा स्त्री दो अपने लिये और दो-दो अन्य चार नियुक्त पुरुषों के लिए दो-दो सन्तान कर सकती और एक मृतस्त्रीपुरुष भी दो अपने लिये और दो-दो अन्य चार विधवाओं के लिये पुत्र उत्पन्न कर सकता है। ऐसे मिलकर दस-दस सन्तानोत्पत्ति की आज्ञा वेद में है। जैसे—

**इमां त्वमिन्द्र मीढ्वः सुपुत्रां सुभगां कृणु ।
दशास्यां पुत्रानार्धेहि पतिमेकादशं कृधि ॥**

—ऋ० मं० १०। सू० ८५। मं० ४५॥

हे (मीढ्व इन्द्र) वीर्य सेचन में समर्थ ऐश्वर्ययुक्त पुरुष ! तू इस विवाहित स्त्री वा विधवा स्त्रियों को श्रेष्ठ पुत्र और सौभाग्ययुक्त कर। इस विवाहित स्त्री में दश पुत्र उत्पन्न कर और ग्यारहवीं स्त्री को मान ! हे स्त्री ! तू भी विवाहित पुरुष वा नियुक्त पुरुषों से दश सन्तान उत्पन्न कर और ग्यारहवाँ पति को समझ। इस वेद की आज्ञा से ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यवर्णस्थ स्त्री और पुरुष दश-दश सन्तान से अधिक उत्पन्न न करें। क्योंकि अधिक करने से सन्तान निर्बल, निर्बुद्धि, अल्पायु होते हैं और स्त्री तथा पुरुष भी निर्बल, अल्पायु और रोगी होकर वृद्धावस्था में बहुत से दुःख पाते हैं।

(प्रश्न) यह नियोग की बात व्यभिचार के समान दीखती है।

(उत्तर) जैसे विना विवाहितों का व्यभिचार होता है वैसे विना नियुक्तों का व्यभिचार कहाता है। इस से यह सिद्ध हुआ कि जैसा नियम से विवाह होने पर व्यभिचार नहीं कहाता तो नियमपूर्वक नियोग होने से व्यभिचार न कहावेगा। जैसे—दूसरे की कन्या का दूसरे के कुमार के साथ शास्त्रोक्त विधिपूर्वक विवाह होने पर समागम में व्यभिचार वा पाप लज्जा नहीं होती, वैसे ही वेदशास्त्रोक्त नियोग में व्यभिचार पाप लज्जा न मानना चाहिये।

(प्रश्न) है तो ठीक, परन्तु यह वेश्या के सदृश कर्म दिखता है।

(उत्तर) नहीं क्योंकि वेश्या के समागम में किसी निश्चित पुरुष वा कोई नियम नहीं है और नियोग में विवाह के समान नियम हैं। जैसे दूसरे को लड़की देने, दूसरे के साथ समागम करने में विवाहपूर्वक लज्जा नहीं होती, वैसे ही नियोग में भी न होनी चाहिये। क्या जो व्यभिचारी पुरुष वा स्त्री होते हैं वे विवाह होने पर भी कुकर्म से बचते हैं?

(प्रश्न) हम को नियोग की बात में पाप मालूम पड़ता है।

(उत्तर) जो नियोग की बात में पाप मानते हो तो विवाह में पाप क्यों नहीं मानते? पाप तो नियोग के रोकने में है? क्योंकि ईश्वर के सृष्टिक्रमानुकूल स्त्री पुरुष का स्वाभाविक व्यवहार रुक ही नहीं सकता, सिवाय वैराग्यवान् पूर्ण विद्वान् योगियों के। क्या गर्भपातनरूप भ्रूणहत्या और विधवा स्त्री और मृतकस्त्री पुरुष के महासन्ताप को पाप नहीं गिनते हो? क्योंकि जब तक वे युवावस्था में हैं मन में सन्तानोत्पत्ति और विषय की चाहना होने वालों को किसी राजव्यवहार वा जातिव्यवहार से रुकावट होने से गुप्त-गुप्त कुकर्म बुरी चाल से होते रहते हैं। इस व्यभिचार और कुकर्म के रोकने का एक यही श्रेष्ठ उपाय है कि जो जितेन्द्रिय रह सकें विवाह वा नियोग भी न करें तो ठीक है। परन्तु जो ऐसे नहीं हैं उन का

विवाह और आपत्काल में नियोग अवश्य होना चाहिये। इस से व्यभिचार का न्यून होना, प्रेम से उत्तम सन्तान होकर मनुष्यों की वृद्धि होना सम्भव है और गर्भहत्या सर्वथा छूट जाती है। नीच पुरुषों से उत्तम स्त्री और वेश्यादि नीच स्त्रियों से उत्तम पुरुषों का व्यभिचाररूप कुकर्म, उत्तम कुल में कलंक, वंश का उच्छेद, स्त्री और पुरुषों को सन्ताप और गर्भहत्यादि कुकर्म विवाह और नियोग से निवृत्त होते हैं, इसलिये नियोग करना चाहिये।

(प्रश्न) नियोग में क्या-क्या बात होनी चाहिये?

(उत्तर) जैसे प्रसिद्धि से विवाह, वैसे ही प्रसिद्धि से नियोग। जिस प्रकार विवाह में भद्र पुरुषों की अनुमति और कन्या-वर की प्रसन्नता होती है, वैसे नियोग में भी। अर्थात् जब स्त्री-पुरुष का नियोग होना हो तब अपने कुटुम्ब में पुरुष स्त्रियों के सामने—‘हम दोनों नियोग सन्तानोत्पत्ति के लिये करते हैं। जैसे नियोग का नियम पूरा होगा तब हम संयोग न करेंगे। जो अन्यथा करें तो पुरुष और जाति वा राज्य के दण्डनीय हों। महीने में एकवार गर्भाधान का काम करेंगे, गर्भ रहे पश्चात् एक वर्ष पर्यन्त पृथक् रहेंगे।’

(प्रश्न) नियोग अपने वर्ण में होना चाहिये या अन्य वर्णों के साथ भी?

(उत्तर) अपने वर्ण में वा अपने से नीचे वर्णस्थ पुरुष के साथ अर्थात् वैश्या स्त्री वैश्य, क्षत्रिय और ब्राह्मण के साथ; क्षात्रिया क्षत्रिय और ब्राह्मण के साथ; ब्राह्मणी ब्राह्मण के साथ नियोग कर सकती है। इसका तात्पर्य यह है कि वीर्य सम वा उत्तम वर्ण का चाहिये, अपने से नीचे वर्ण का नहीं। स्त्री और पुरुष की सृष्टि का यही प्रयोजन है कि धर्म से अर्थात् वेदिक रीति से विवाह वा नियोग से सन्तानोत्पत्ति करना।

(प्रश्न) पुरुष को नियोग करने की क्या आवश्यकता है क्योंकि वह दूसरा विवाह करेगा?

(उत्तर) हम लिख आये हैं, द्विजों में स्त्री और पुरुष का एक ही वार विवाह होना वेदादि शास्त्रों में लिखा है, द्वितीय वार नहीं। कुमार और कुमारी का विवाह होने में न्याय और विधवा स्त्री के साथ कुमार पुरुष और कुमारी स्त्री के साथ मृतस्त्री पुरुष के विवाह होने में अन्याय अर्थात् अधर्म है। जैसे विधवा स्त्री के साथ कुमार पुरुष विवाह नहीं किया चाहता, वैसे ही विवाहित स्त्री से समागम किये हुए पुरुष के साथ विवाह करने की इच्छा कुमारी भी न करेगी। जब विवाह किये हुए पुरुष को कोई कुमारी कन्या और विधवा स्त्री का ग्रहण कोई कुमार पुरुष न करेगा तब पुरुष और स्त्री को नियोग करने की आवश्यकता होगी और यही धर्म है कि जैसे के साथ वैसे ही का सम्बन्ध होना चाहिये।

(प्रश्न) जैसे विवाह में वेदादि शास्त्रों का प्रमाण है, वैसे नियोग में प्रमाण है वा नहीं?

(उत्तर) इस विषय में बहुत प्रमाण हैं। देखो और सुनो—

कुहं स्वद्दोषा कुह वस्तोरश्विना कुहाभिपित्वं करतः कुहोषतुः ।
को वां शयुत्रा विधवेव देवरं मर्य्यं न योषा कृणुते सधस्थ आ ॥

—ऋ० मं० १०। सू० ४०। मं० २॥

**उदीर्घ्वं नार्यभिर्जीवलोकं गतासुमेतमुप शेष एहि ।
हस्तग्राभस्य दिधिषोस्तवेदं पत्युर्जनित्वमभि सं बभूथ ॥२॥**

—ऋ० मं० १०। सू० १८। मं० ८॥

हे (अश्विना) स्त्री पुरुषो ! जैसे (देवरं विधवेव) देवर को विधवा और (योषा मर्यन्न) विवाहिता स्त्री अपने पति को (सधस्थे) समान स्थान शय्या में एकत्र होकर सन्तानोत्पत्ति को (आ कृणुते) सब प्रकार से उत्पन्न करती है, वैसे तुम दोनों स्त्री पुरुष (कुह स्विदोषा) कहां रात्रि और (कुह वस्तः) कहां दिन में वसे थे? (कुहाभिपित्वम्) कहां पदार्थों की प्राप्ति (करतः) की? और (कुहोषतुः) किस समय कहां वास करते थे? (को वां शयुत्रा) तुम्हारा शयनस्थान कहां है? तथा कौन वा किस देश के रहने वाले हो? इससे यह सिद्ध हो कि देश विदेश में स्त्री पुरुष संग ही में रहें और विवाहित पति के समान नियुक्त पति को ग्रहण करके विधवा स्त्री भी सन्तानोत्पत्ति कर लेवे।

(प्रश्न) यदि किसी का छोटा भाई ही न हो तो विधवा नियोग किसके साथ करे?

(उत्तर) देवर के साथ, परन्तु देवर शब्द का अर्थ जैसा तुम समझे हो वैसा नहीं। देखो निरुक्त में—

देवरः कस्माद् द्वितीयो वर उच्यते । —निरु० अ० ३। खण्ड १५॥

देवर उस को कहते हैं कि जो विधवा का दूसरा पति होता है, चाहे छोटा भाई वा बड़ा भाई, अथवा अपने वर्ण वा अपने से उत्तम वर्ण वाला हो, जिस से नियोग करे उसी का नाम देवर है।

(नारि) विधवे तू (एतं गतासुम्) इस मरे हुए पति की आशा छोड़ के (शेषे) बाकी पुरुषों में से (अभि जीवलोकम्) जीते हुए दूसरे पति को (उपैहि) प्राप्त हो और (उदीर्घ्वं) इस बात का विचार और निश्चय रख कि जो (हस्तग्राभस्य दिधिषोः) तुम विधवा के पुनः पाणिग्रहण करने वाले नियुक्त पति के सम्बन्ध के लिये नियोग होगा तू (इदम्) यह (जनित्वम्) जना हुआ बालक उसी नियुक्त (पत्युः) पति का होगा और जो तू अपने लिये नियोग करेगी तो यह सन्तान (तव) तेरा होगा। ऐसे निश्चय युक्त (अभि सम् बभूथ) हो और नियुक्त पुरुष भी इसी नियम का पालन करे।

अदेवृच्च्यपतिघ्नीहैधि शिवा पशुभ्यः सुयमा सुवर्चाः ।

प्रजावती वीरसूदेवृकामा स्योनेममग्निं गार्हपत्यं सपर्य ॥

—अथर्व० का० १४। अनु० २। मं० १८॥

हे (अपतिघ्न्यदेवृघ्नि) पति और देवर को दुःख न देने वाली स्त्री तू (इह) इस गृहाश्रम में (पशुभ्यः) पशुओं के लिये (शिवा) कल्याण करनेहारी (सुयमा) अच्छे प्रकार धर्म-नियम में चलने (सुवर्चाः) रूप और सर्वशास्त्र विद्यायुक्त (प्रजावती) उत्तम पुत्र पौत्रादि से सहित (वीरसूः) शूरवीर पुत्रों को जनने (देवृकामा) देवर की कामना करने वाली (स्योना) और सुख देनेहारी पति वा देवर को (एधि) प्राप्त होके (इमम्) इस (गार्हपत्यम्) गृहस्थ सम्बन्धी (अग्निम्) अग्निहोत्र को

(सपर्य) सेवन किया कर।

तामनेन विधानेन निजो विन्देत देवरः ॥ मनु० ॥

जो अक्षतयोनि स्त्री विधवा हो जाय तो पति का निज छोटा भाई उस से विवाह कर सकता है।

(प्रश्न) एक स्त्री वा पुरुष कितने नियोग कर सकते हैं और विवाहित नियुक्त पतियों का नाम क्या होता है?

(उत्तर) **सोमः प्रथमो विविदे गन्धर्वो विविद् उत्तरः ।**

तृतीयो अग्निष्टे पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजाः ॥

—ऋ० मं० १० । सू० ८५ । मं० ४०॥

हे स्त्रि! जो (ते) तेरा (प्रथमः) पहला विवाहित (पतिः) पति तुझ को (विविदे) प्राप्त होता है उस का नाम (सोमः) सुकुमारतादि गुणयुक्त होने से सोम, जो दूसरा नियोग होने से (विविदे) प्राप्त होता वह (गन्धर्वः) एक स्त्री से संभोग करने से गन्धर्व, जो (तृतीय उत्तरः) दो के पश्चात् तीसरा पति होता है वह (अग्निः) अत्युष्णतायुक्त होने से अग्निसंज्ञक और जो (ते) तेरे (तुरीयः) चौथे से लेके ग्यारहवें तक नियोग से पति होते हैं वे (मनुष्यजाः) मनुष्य नाम से कहाते हैं। जैसा (इमां त्वमिन्द्र) इस मन्त्र में ग्यारहवें पुरुष तक स्त्री नियोग कर सकती है, वैसे पुरुष भी ग्यारहवीं स्त्री तक नियोग कर सकता है।

(प्रश्न) एकादश शब्द से दस पुत्र और ग्यारहवें पति को क्यों गिने?

(उत्तर) जो ऐसा अर्थ करेगा तो 'विधवे देवरम्' 'देवरः कस्माद् द्वितीयो वर उच्यते' 'अदेवृद्धि' और 'गन्धर्वो विविद् उत्तरः' इत्यादि वेदप्रमाणों से विरुद्धार्थ होगा क्योंकि तुम्हारे अर्थ से दूसरा भी पति प्राप्त नहीं हो सकता।

देवराद्वा सपिण्डाद्वा स्त्रिया सम्यङ् नियुक्तया ।

प्रजेप्सिताधिगन्तव्या सन्तानस्य परिक्षये ॥ १ ॥

ज्येष्ठो यवीयसी भार्य्या यवीयान्वाग्रजस्त्रियम् ।

पतितौ भूक्ता गत्वा नियुक्तावप्यनापदि ॥ २ ॥

औरसः श्रेष्ठजश्चैव ॥ ३ ॥

मनु० ॥

इत्यादि मनु जी ने लिखा है कि (सपिण्ड) अर्थात् पति की छः पीढ़ियों में पति का छोटा वा बड़ा भाई अथवा स्वजातीय तथा अपने से उत्तम जातिस्थ पुरुष से विधवा स्त्री का नियोग होना चाहिये। परन्तु जो वह मृतस्त्रीपुरुष वा विधवा स्त्री सन्तानोत्पत्ति की इच्छा करती हो तो नियोग होना उचित है। और जब सन्तान का सर्वथा क्षय हो तब नियोग होवे। जो आपत्काल अर्थात् सन्तानों के होने की इच्छा न होने में बड़े भाई की स्त्री से छोटे का और छोटे की स्त्री से बड़े भाई का नियोग होकर सन्तानोत्पत्ति हो जाने पर भी पुनः वे नियुक्त आपस में समागम करें तो पतित हो जायें। अर्थात् एक नियोग में दूसरे पुत्र के गर्भ रहने तक नियोग की अवधि है, इसके पश्चात् समागम न करें और जो दोनों के लिये नियोग हुआ हो तो चौथे गर्भ तक अर्थात् पूर्वोक्त रीति से दस सन्तान तक हो सकते हैं। पश्चात् विषयासक्ति गिनी जाती है, इस से वे पतित गिने जाते हैं और जो विवाहित स्त्री पुरुष भी दशवें गर्भ से अधिक समागम करें तो कामी और निन्दित होते हैं? अर्थात् विवाह वा नियोग

सन्तानों ही के अर्थ किये जाते हैं पशुवत् कामक्रीडा के लिये नहीं।

(प्रश्न) नियोग मरे पीछे ही होता है वा जीते पति के भी?

(उत्तर) जीते भी होता है—

अन्यमिच्छस्व सुभगे पतिं मत् ॥

—ऋ० मं० ११। सू० १०॥

जब पति सन्तानोत्पत्ति में असमर्थ होवे तब अपनी स्त्री को आज्ञा देवे कि हे सुभगे! सौभाग्य की इच्छा करने हारी स्त्री तू (मत्) मुझ से (अन्यम्) दूसरे पति की (इच्छस्व) इच्छा कर क्योंकि अब मुझ से सन्तानोत्पत्ति की आशा मत कर। तब स्त्री दूसरे से नियोग करके सन्तानोत्पत्ति करे परन्तु उस विवाहित महाशय पति की सेवा में तत्पर रहै। वैसे ही स्त्री भी जब रोगादि दोषों से ग्रस्त होकर सन्तानोत्पत्ति में असमर्थ होवे तब अपने पति को आज्ञा देवे कि हे स्वामी अब सन्तानोत्पत्ति की इच्छा मुझ से छोड़ के किसी दूसरी विधवा स्त्री से नियोग करके सन्तानोत्पत्ति कीजिये। जैसा कि पाण्डु राजा की स्त्री कुन्ती और माद्री आदि ने किया और जैसा व्यास जी ने चित्राङ्गद और विचित्रवीर्य के मर जाने पश्चात् उन अपने भाइयों की स्त्रियों से नियोग करके अम्बिका में धृतराष्ट्र और अम्बालिका में पाण्डु और दासी में विदुर की उत्पत्ति की। इत्यादि इतिहास भी इस बात में प्रमाण है।

प्रोषितो धर्मकार्यार्थं प्रतीक्ष्योऽष्टौ वरः समाः।

विद्यार्थं षड् यशोऽर्थं वा कामार्थं त्रैस्तु वत्सरान् ॥ १ ॥

वन्ध्याष्टमेऽधिवेद्याब्दे दशमे तु पुत्रप्रजाः।

एकादशे स्त्रीजननी सद्यस्त्वपियवादिनी ॥ २ ॥ मनु० ॥

विवाहित स्त्री जो विवाहित पति धर्म के अर्थ परदेश गया हो तो आठ वर्ष, विद्या और कीर्ति के लिये गया हो तो छः और धनादि कामना के लिये गया हो तो तीन वर्ष तक बाट देखे, पश्चात् नियोग करके सन्तानोत्पत्ति कर ले। जब विवाहित पति आवे तब नियुक्त पति छूट जावे ॥ १ ॥ वैसे ही पुरुष के लिये भी नियम है कि वन्ध्या हो तो आठवें (विवाह से आठ वर्ष तक स्त्री को गर्भ न रहै), सन्तान होकर मरे जायें तो दशवें, जब-जब हो तब-तब कन्या ही होवे पुत्र न हों तो ग्यारहवें वर्ष तक और जो अप्रिय बोलने वाली हो तो सद्यः उस स्त्री को छोड़ के दूसरी स्त्री से नियोग करके सन्तानोत्पत्ति कर लेवे ॥ २ ॥

वैसे ही जो पुरुष अत्यन्त दुःखदायक हो तो स्त्री को उचित है कि उस को छोड़ के दूसरे पुरुष से नियोग कर सन्तानोत्पत्ति करके उसी विवाहित पति के दायभागी सन्तानोत्पत्ति कर लेवे। इत्यादि प्रमाण और युक्तियों से स्वयंवर विवाह और नियोग से अपने-अपने कुल की उन्नति करे। जैसा 'औरस' अर्थात् विवाहित पति से उत्पन्न हुआ पुत्र पिता के पदार्थों का स्वामी होता है वैसे ही 'क्षेत्रज' अर्थात् नियोग से उत्पन्न हुए पुत्र भी पिता के दायभागी होते हैं।

अब इस पर स्त्री और पुरुष को ध्यान रखना चाहिये कि वीर्य और रज को अमूल्य समझें। जो कोई इस अमूल्य पदार्थ को परस्त्री, वेश्या वा दुष्ट पुरुषों के संग में खोते हैं वे महामूर्ख होते हैं। क्योंकि किसान वा माली मूर्ख होकर भी अपने खेत वा वाटिका के विना अन्यत्र बीज नहीं बोते। जो कि साधारण बीज और मूर्ख का ऐसा वर्तमान है तो जो सर्वोत्तम मनुष्यशरीर रूप वृक्ष के बीज को कुक्षेत्र में खोता है वह महामूर्ख कहाता है, क्योंकि उस का फल उस को नहीं

मिलता और 'आत्मा वै जायते पुत्रः' यह ब्राह्मण ग्रन्थों का वचन है ।

**अङ्गादङ्गात् सम्भवसि हृदयादधि जायसे ।
आत्मासि पुत्र मा मृथाः स जीव श्रदः शतम् ॥**

यह सामवेद के ब्राह्मण का वचन है।

हे पुत्र! तू अङ्ग-अङ्ग से उत्पन्न हुए वीर्य से और हृदय से उत्पन्न होता है, इसलिये तू मेरा आत्मा है, मुझ से पूर्व मत मरे किन्तु सौ वर्ष तक जी। जिस से ऐसे-ऐसे महात्मा और महाशयों के शरीर उत्पन्न होते हैं उस को वेश्यादि दुष्ट क्षेत्र में बोना वा दुष्टबीज अच्छे क्षेत्र में बुवाना महापाप का काम है।

(प्रश्न) विवाह क्यों करना? क्योंकि इस से स्त्री पुरुष को बन्धन में पड़के बहुत संकोच करना और दुःख भोगना पड़ता है इसलिये जिस के साथ जिस की प्रीति हो तब तक वे मिले रहें, जब प्रीति छूट जाय तो छोड़ देवें।

(उत्तर) यह पशु पक्षियों का व्यवहार है, मनुष्यों का नहीं। जो मनुष्यों में विवाह का नियम न रहे तो गृहाश्रम के अच्छे-अच्छे व्यवहार सब नष्ट भ्रष्ट हो जायें। कोई किसी की सेवा भी न करे। और महाव्यभिचार बढ़ कर सब रोगी निर्बल और अल्पायु होकर शीघ्र-शीघ्र मर जायें। कोई किसी से भय वा लज्जा न करे। वृद्धावस्था में कोई किसी की सेवा भी नहीं करे और महाव्यभिचार बढ़ कर सब रोगी निर्बल और अल्पायु होकर कुलों के कुल नष्ट हो जायें। कोई किसी के पदार्थों का स्वामी वा दायभागी भी न हो सके और न किसी का किसी पदार्थ पर दीर्घकालपर्यन्त स्वत्व रहे। इत्यादि, लोगों के निवारणार्थ विवाह ही होना सर्वथा योग्य है।

(प्रश्न) जब एक विवाह होगा एक पुरुष को एक स्त्री और एक स्त्री को एक पुरुष रहेगा जब स्त्री गर्भवती स्थिररोगिणी अथवा पुरुष दीर्घरोगी हो और दोनों की युवावस्था हो, रहा न जाय तो फिर क्या करे?

(उत्तर) इस का प्रत्युत्तर नियोग विषय में दे चुके हैं। और गर्भवती स्त्री से एक वर्ष समागम न करने के समय में दीर्घरोगी पुरुष की स्त्री से न रहा जाय तो किसी से नियोग करके उस के लिए पुत्रोत्पत्ति कर दे, परन्तु वेश्यागमन वा व्यभिचार कभी न करे।

जहां तक हो वहां तक अप्राप्त वस्तु की इच्छा, प्राप्त का रक्षण और रक्षित की वृद्धि, बढ़े हुए धन का व्यय देशोपकार करने में किया करें। सब प्रकार के अर्थात् पूर्वोक्त रीति से अपने-अपने वर्णाश्रम के व्यवहारों को अत्युत्साहपूर्वक प्रयत्न से तन, मन, धन से सर्वदा परमार्थ किया करें। अपने माता, पिता, शाशु श्वशुर की अत्यन्त शुश्रूषा करें। मित्र और अड़ोसी पड़ोसी, राजा, विद्वान्, वैद्य और सत्पुरुषों से प्रीति रख के और जो दुष्ट अधर्मी हों उनसे उपेक्षा अर्थात् द्रोह छोड़ कर उनके सुधारने का प्रयत्न किया करें। जहाँ तक बने वहां तक प्रेम से अपने सन्तानों के विद्वान् और सुशिक्षा करने कराने में धनादि पदार्थों का व्यय करके उनको पूर्ण विद्वान् सुशिक्षायुक्त कर दें और धर्मयुक्त व्यवहार करके मोक्ष का भी साधन किया करें कि जिसकी प्राप्ति से परमानन्द भोगें। और ऐसे-ऐसे श्लोकों को न मानें। जैसे—

**पतितोऽपि द्विजः श्रेष्ठो न च शूद्रो जितेन्द्रियः ।
निर्दग्धा चापि गौः पूज्या न च दुग्धवती खरी ॥ १ ॥**

अश्वालम्भं गवालम्भं संन्यासं पलपैत्रिकम्।
 देवराच्च सुतोत्पत्तिं कलौ पञ्च विवर्जयेत् ॥ २ ॥
 नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीबे च पतिते पतौ।
 पञ्चस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते ॥ ३ ॥

ये कपोलकल्पित पाराशरी के श्लोक हैं।

जो दुष्ट कर्मकारी द्विज को श्रेष्ठ और श्रेष्ठ कर्मकारी शूद्र को नीच मानें तो इस से परे पक्षपात, अन्याय, अधर्म दूसरा अधिक क्या होगा? क्या दूध देने वाली वा न देने वाली गाय गोपालों को पालनीय होती है, वैसे कुम्हार आदि को गधही पलनीय नहीं होती? और यह दृष्टान्त भी विषम है, क्योंकि द्विज और शूद्र मनुष्य जाति गाय और गधही भिन्न जाति हैं। कथञ्चित् पशु जाति से दृष्टान्त का एकदेश दार्ष्टान्त में मिल भी जावे तो भी इसका आशय अयुक्त होने से ये श्लोक विद्वानों के माननीय कभी नहीं हो सकते ॥ १ ॥

जब अश्वालम्भ अर्थात् घोड़े को मार के अथवा गाय को मार के होम करना ही वेदविहित नहीं है तो उसका कलियुग में निषेध करना वेदविरुद्ध क्यों नहीं? जो कलियुग में इस नीच कर्म का निषेध माना जाय तो त्रेता आदि में विधि आ जाय तो इस में ऐसे दुष्ट काम का श्रेष्ठ युग में होना सर्वथा असम्भव है। और संन्यास की वेदादि शास्त्रों में विधि है उस का निषेध करना निर्मूल है। जब मांस का निषेध है तो सर्वदा ही निषेध है। जब त्रेता से पुत्रोत्पत्ति करनी वेदों में लिखी है तो यह श्लोककर्ता क्यों भूषता है? ॥ २ ॥

यदि (नष्टे) अर्थात् पति किसी देश देशान्तर को चला गया हो घर में स्त्री नियोग कर लेवे उसी समय विवाहित पति आ जाय तो वह किस की स्त्री हो? कोई कहे कि विवाहित पति को। हम ने माना; परन्तु ऐसी व्यवस्था पाराशरी में नहीं लिखी। क्या स्त्री के मृत्यु ही आपत्काल हैं? जो रोगी पड़ा हो वा लड़ाई हो गई हो इत्यादि आपत्कार पांच से भी अधिक हैं। इसलिये ऐसे-ऐसे श्लोकों को कभी न मानना चाहिये ॥ ३ ॥

(प्रश्न) क्यों जो तुम पराशर मुनि के वचन को भी नहीं मानते?

(उत्तर) मैंने किसी का वचन ही परन्तु वेदविरुद्ध होने से नहीं मानते। और यह तो पराशर का वचन भी नहीं है क्योंकि जैसे 'ब्रह्मोवाच, वसिष्ठ उवाच, राम उवाच, शिव उवाच, विष्णुरुवाच, देव्युवाच' इत्यादि श्रेष्ठों का नाम लिख के ग्रन्थरचना इसलिये करते हैं कि सर्वमान्य के नाम से इन ग्रन्थों को सब संसार मान लेवे और हमारी पुष्कल जीविका भी हो। इसलिये अनर्थ गाथायुक्त ग्रन्थ बनाते हैं। कुछ-कुछ प्रक्षिप्त श्लोकों को छोड़ के मनुस्मृति ही वेदानुकूल है, अन्य स्मृति नहीं। ऐसे ही अन्य जालग्रन्थों की भी व्यवस्था समझ लो।

(प्रश्न) गृहाश्रम सब से छोटा वा बड़ा है?

(उत्तर) अपने-अपने कर्तव्यकर्मा में सब बड़े हैं। परन्तु—

यथा नदीनदाः सर्वे सागरे यान्ति संस्थितिम्।

तथैवाश्रमिणः सर्वे गृहस्थे यान्ति संस्थितिम् ॥ १ ॥

यथा वायुं समाश्रित्य वर्तन्ते सर्वजन्तवः।

तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्तन्ते सर्व आश्रमाः ॥ २ ॥

यस्मात्त्रयोऽप्याश्रमिणो दानेनानेन चान्वहम्।
 गृहस्थेनैव धार्यन्ते तस्माज्जयेष्ठाश्रमो गृही ॥ ३ ॥
 स संधार्यः प्रयत्नेन स्वर्गमक्षयमिच्छता।
 सुखं चेहेच्छता नित्यं योऽधार्यो दुर्बलेन्द्रियैः ॥ ४ ॥ मनु० ॥

जैसे नदी और बड़े-बड़े नद तब तक भ्रमते ही रहते हैं जब तक समुद्र को प्राप्त नहीं होते, वैसे गृहस्थ ही के आश्रय से सब आश्रम स्थिर रहते हैं ॥ १ ॥ विना इस आश्रम के किसी आश्रम का कोई व्यवहार सिद्ध नहीं होता ॥ २ ॥ जिस से ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और संन्यासी तीन आश्रमों को दान और अन्नादि देके प्रतिदिन गृहस्थ ही धारण करता है इससे गृहस्थ ज्येष्ठाश्रम है, अर्थात् सब व्यवहारों में धुरन्धर कहाता है ॥ ३ ॥ इसलिये जो (अक्षय) मोक्ष और संसार के सुख की इच्छा करता हो वह प्रयत्न से गृहाश्रम का धारण करे। जो गृहाश्रम दुर्बलेन्द्रिय अर्थात् भीरु और निर्बल पुरुषों से धारण करने के अयोग्य है उसको अच्छे प्रकार धारण करे ॥ ४ ॥

इसलिये जितना कुछ व्यवहार संसार में है उसका आधार गृहाश्रम है। जो यह गृहाश्रम न होता तो सन्तानोत्पत्ति के न होने से ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम कहां से हो सकते? जो कोई गृहाश्रम की निन्दा करता है वही निन्दनीय है और जो प्रशंसा करता है वही प्रशंसनीय है। परन्तु तभी गृहाश्रम में सुख होता है जब स्त्री पुरुष दोनों परस्पर प्रसन्न, विद्वान्, पुरुषार्थी और सब प्रकार के व्यवहारों के ज्ञाता हों। इसलिये गृहाश्रम के सुख का मुख्य कारण ब्रह्मचर्य और पूर्वोक्त स्वयंवर विवाह है।

यह संक्षेप से समावर्तन विवाह और गृहाश्रम के विषय में शिक्षा लिख दी। इसके आगे वानप्रस्थ और संन्यास के विषय में लिखा जायेगा।

इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिकृते सत्यार्थप्रकाशे
 सुभाषाविभूषिते समावर्तनविवाहगृहाश्रमविषये
 चतुर्थः समुल्लासः सम्पूर्णः ॥ ४ ॥